www.thearyasamaj.org

Annual Subscription Rs. 100/- ओ३म् 27 th Aug 2013

आर्य जीवन
ఆర్య జీవన్

संस्कृति संरक्षण व सामाजिक परिवर्तन का संकल्प
హిందీ-తెలుగు ద్విభాషా పక్ష పత్రిక

श्रावणी पूर्णिमा २१ अगस्त २०१३ के दिन श्रावणी उपाकर्म पर्व के साथ-साथ

हैदराबाद आर्य सत्याग्रह के शहीदों को श्रद्धांजलि देने हेतु

आर्य समाज राष्ट्रपति रोड, सिकंद्राबाद में

श्री के. केशवरावजी

पूर्व CWC सदस्य व वर्तमान में टीआरएस पार्टी के महासचिव

सभा प्रधान श्री विट्ठलराव आर्य, ने नारा दिया कि

शहर हमारा - गाँव हमारा, जय तेलंगाना-जय तेलंगाना

श्रावणी पूर्णिमा २१ अगस्त २०१३ के दिन श्रावणी उपाकर्म पर्व नगरद्वय की समस्त आर्य समाजों के प्रतिनिधि गण आर्य परिवार एवं प्रमुख महानुभावों ने भारी संख्या में उपस्थिति दर्ज कर

बनाया।

श्री के. केशवरावजी ने बलिदान को भुलाया नहीं व आर्य जनता ने न केवल लिए, बल्कि धीरे-धीरे अधिकारों के लिए भी आर्य समाज १९३८-३९ साथ-साथ रज़ाकारों के अपनी आवाज़ और ले गया था। आज समय और अन्याय के खिलाफ तेलंगाना आंदोलन चल आंदोलन के सम्मुख है। लेकिन अब भी सीमांध्र हैदराबाद को लेकर अडंगा

कार्यक्रम को सफल

कहा कि आर्यवीरों के जा सकता। आर्य शहीद नागरिक अधिकारों के अपने राजनीतिक संघर्ष को तेज़ किया था। में आर्य सत्याग्रह के अत्याचारों के खिलाफ आंदोलन को बुलंदी तक की माँग है कि शोषण अपने अस्तित्व के लिए रहा है। करोड़ों लोगों के कांग्रेस को झुकना पड़ा के राजनीतिक लोग लगाने की कोशिश कर

रहे हैं, जिसे हम सब लोग मिलकर तोड़ना है तथा हैदराबाद पर सर्वाधिकार सहित तेलंगाना को हासिल करना है। तेलंगाना राज्य को बनाने की प्रक्रिया पूरी होने तक हम सबको सचेत रहना चाहिए और आंदोलन को आगे बढ़ाना चाहिए। इस अवसर पर सभा प्रधान विठ्टलराव आर्य ने कहा कि आर्य समाज हमेशा अन्याय के खिलाफ जनता के पक्ष में रहा है और रहेगा। चाहे वो निज़ाम के ज़माने का काल रहा हो, या आज के सीमांध्र नेताओं के शोषण का काल हो। हैदराबाद पिछले चारसौ वर्षों से यहाँ की राजधानी रही है। अत: आगे भी रहेगी। बिना हैदराबाद के तेलंगाना राज्य

श्री के. केशबरावजी डॉ. टी.वी. नारायणजी से बात करते हुए। मध्य में सभा प्रधान विठ्ठलराव आर्य

श्री केशवरावजी का सम्मान करते हुएनिवर्तमान मंत्री श्री व्यंकट रघुरामुलुजी ।

सिकंदराबाद समाज के कार्यकर्ता डॉ. के. केशवरावजी के साथ। सभा प्रधानविठ्ठलराव आर्य डॉ. के केशवरावजी का सम्मान करते हुए

www.thearyasamaj.org

ओ३म्

आर्य जीवन

संस्कृति संरक्षण व सामाजिक परिवर्तन का संकल्प

ఆర్య జీవన్

హింది-తెలుగు ద్విభాషా పక్ష పత్రిక

आर्य प्रतिनिधि सभा आन्ध्र प्रदेश
हैदराबाद का मुख पत्र

वर्ष : २२ अंक : १६
दयानन्दाब्द : १८९
सृष्टि संवत् : १९७२९४९११३
वि.सं. : २०७०
नंदन नाम संवत् श्रावण कृष्ण पक्ष
२७-८-२०१३

सम्पादक
विठ्ठलराव आर्य
वार्षिक मूल्य रू. 100

कार्यालय
आर्य प्रतिनिधि सभा आन्ध्र प्रदेश
महर्षि दयानन्द मार्ग, सुल्तान बाजार, हैदराबाद

दूरभाषः 040-24753827, 66758707, 24750363
फ्याक्सः 040-24557946, 24756983

Email :
aaryajeevan_aaryajivan@yahoo.co.in.
arpratinidhisabha@yahoo.co.in.
acharyavithal@gmail.com,
aryavithal@yahoo.co.in.

THE VIEWS & THE NEWS PUBLISHED IN THIS ISSUE MAY NOT NECESSARILY BE AGREEABLE TO THE EDITOR

Editor: Vithal Rao Arya
Annual subscription: **Rs.100/-**

प्रत्येक मनुष्य को पुरूषार्थ पर ध्यान देना चाहिए। इसी के द्वारा क्रियामाण, संचित और प्रारब्ध कर्म की स्थिति सुधरती है। इसी से मनुष्य उत्तम स्थिति को प्राप्त हो कर उन्नति के पात्र बनते है।

Swami Agnivesh demands arrest of Asaram Bapu booked for raping minor

Social activist Swami Agnivesh on Friday appealed to Rajasthan Chief Minister Ashok Gehlot to immediately arrest self-styled godman Asaram Bapu, who has been booked on charges of forcing a 16-year-old girl into unnatural sex at a Jodhpur ashram a week ago.

"Of all the allegations made on Asaram Bapu, I feel this is the most serious and closest to the truth. The way he raped a minor girl studying in his gurukul and is trying to hide it, I spoke to Ashok Gehlot and he has said that he will definitely ensure that the law is put into place. I appeal that Ashok Gehlot's Government should arrest him immediately," he said.

"And people like these who are portraying themselves as spiritual leader and taking advantage of people's religious sentiments should be dealt severely," he added.

Rajasthan Chief Minister Ashok Gehlot yesterday said the rape charge against self-styled godman Asaram Bapu was being investigated by Jodhpur Police Commissioner, and added that appropriate action would be taken on the basis of 'truth and facts'.

"I have spoken to Jodhpur Police Commissioner last night and told him to investigate the case at every level, and ensure action based on truth and facts," Gehlot said.

"Jodhpur Police Commissioner and Superintendent of Police are tackling the case...let the process of probe be completed," he added.

Gehlot asked the saints preaching religion or spirituality to maintain their best character and work in their limit as any bad message hurts and shocks their followers.

www.thearyasamaj.org

आर्य समाज के कालजयी ग्रंथ

(पृष्ठ ४ से १५ तक डॉ. भवानीलाल भारतीय कृत कालजयी ग्रंथ से साभार)

खुद की लिखी पुस्तक पर लेखक स्वयं ही लिखे, यह कोई दोष नहीं है। लेखक अपनी रचना के गुण-दोषों की स्वयं जैसी जानकारी रखता है, वैसी दूसरे नहीं रखते। अपने पुत्र के चरित्र, स्वभाव, गुणावगुणों का जैसा परिचय पिता को होता है, दूसरों को नहीं हो सकता। इसी न्याय से 'नवजागरण के पुरोधा को कालजयी ग्रंथ समझकर ये पंक्तियाँ लिख रहा हूँ। युग प्रवर्तक भारतीय जागृति के अग्रदूत स्वामी दयानंद सरस्वती का बृहद्काय (६५० पृष्ठों का) जीवन चरित लिखने की पात्रता उस समय में स्वयं नहीं पाता था। मेरी मान्यता थी कि पं. लेखराम, देवेंद्रनाथ मुखर्जी तथा स्वामी दयानंद ने जो काम कर दिया, अब उस पर कलम चलाने की क्या आवश्यकता है? ये सभी जीवन के लेखक इस कार्य में सक्षम तथा योग्य थे। किन्तु स्वामी दयानंद का एक सर्वांगीण जीवन लिखने का विचार मेरे मन में तब आया, जब कलकत्ता के स्व. दीनबंधु, वेद शास्त्री ने ऋषि की एक कल्पित अज्ञात जीवनी को धारावाहिक 'सार्वदेशिक पत्र' में प्रकाशित कराया तथा मैंने उसके तथ्य के विरुद्ध पाकर उसका खण्डन किया। तब अनेक मित्रों ने मुझसे कहा कि आज खुद ऋषि का जीवन चरित क्यों नहीं लिखते?

यह विगत शती के सत्तर के दशक की बात है। मैं सार्वदेशिक सबा का उपमन्त्री था। सभा ने औपचारिक रूप से जीवनी लिखने का काम मुझे सौंपा। उधर स्वामी सच्चिदानन्द (पूर्व में राजेन्द्रनाथ शास्त्री) इस जाली अज्ञात जीवनी पर इतने मुग्ध हुए कि झटपट कलकत्ता जाकर दीनबन्धुजी से मिले और वहाँ से लौटकर स्वामी दयानन्द सरस्वती की अज्ञात जीवनी के नाम से एक पुस्तक छपा डाली। अब तो विचार-विमर्श के लिए कोई अवकाश ही नहीं रहा। इधर सभा का आदेश था कि आप जीवनी लिखें। मैंने ऋषि की जीवनी लिखने की तैयारी की। निश्चित आवधि में पांडुलिपि तैयार हुई। उसे टाइप कराया तथा दो प्रतियाँ सभा के पास प्रकाशनार्थ भेजीं। सभा ने इसे तीन व्यक्तियों के पैनल को निरीक्षणार्थ सौंपा। पैनल में थे सर्वश्री डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार, पं. शिवकुमार शास्त्री तथा पं. रघुनाथ प्रसाद पाठक। आज की पीढ़ी के लोगों को यह पता शायद न हो कि पाठकजी सार्वदेशिक सभा के अधिष्ठाता तो थे ही, हिन्दी और अंग्रेजी के अच्छे लेखक भी थे। तीनों ने मेरी पुस्तक को निर्दोष पाया, कतिपय सुझाव दिये, जो मुझे स्वीकार्य थे, तथा सभा को छापने के लिए कह दिया।

इस बीच सार्वदेशिक सभा में कुछ ऐसे लोग आ गये, जिनके ऋषि जीवनी में तो कुछ गति नहीं थी, किन्तु जो ऋषि दयानंद की १८५७ की कपोल-कल्पित भूमिका पर फिदा थे, उन्होंने अन्तरंग सभा में कहा कि जब-तक भारतीयजी १८५७ वाला प्रसंग इसमें न जोड़े, पुस्तक न छपाई जाए। मैं ऋषि के बारे में कोई अप्रमामाणिक, मनःप्सत्तुता सामग्री उस सत्यवादी, सत्यकामी महापुरुष के जीवन में डालने के सख्त खिलाफ था। फलतः यह ग्रंथ नहीं छप सका। मैंने समझ लिया कि मेरा आश्रय व्यर्थ गया। इस बीच सभा के मन्त्री पं. ओम प्रकाश त्यागी ने मुझसे कहा, 'भारतीय जी, बातें चाहें कल्पित ही क्यों न हो, ऋषि की जीवनी में उन्हें प्रविष्ट कराने से उनका गौरव बढ़ेगा ही। हर आदमी का यह कर्तव्य है कि वह अपने आचार्य का रुतबा बढ़ाएँ।'

मैंने विनम्र उत्तर देकर कहा- 'मन्त्रीजी, ऋषि दयानंद की महानता और गौरव उसी में है, जैसे वे थे। मिथ्या बातों को उनसे जोड़कर उन्हें अपयश ही मिलेगा, उनका गौरव नहीं बढ़ेगा।'

बात वहीं समाप्त हो गई। जीवनी का वह टंकित आलेख मेरे पास सुरक्षित है। जीवनी तो लिख डाली, किन्तु मुझे उससे पूरा सन्तोष नहीं था। इस बीच कन्या गुरुकुल पोरबंदर के उपाचार्य, प्रेमचंद युग के समर्थ लेखक, मूलतः गुजराती, स्व. पं. शंकरदेव विद्यालंकर से जब-जब भेंट होती, या वे पत्र लिखते, उनका अनुरोध रहता कि मेरे द्वारा लिखी जीवनी में समग्रतः, चारुता और सम्यकता रहनी चाहिए। ये तीनों शब्द मेरे मार्गदर्शक बन गये। उधर साहित्य के अनन्य प्रेमी करनाल के स्व. रायसाहब चौधरी प्रताप सिंहजी का आग्रह था कि मैं दयानंद को विश्वमानव (यूनिवर्सल मैन) के रूप में उपस्थित करूँ। इधर १९८३ का साल आया और परोपकारिणी सभा ने ऋषि की निर्वाण शताब्दि अजमेर में मनाई। इस अवसर पर मैंने सभा के मन्त्री स्व. श्री करन शारदा को इस बात के लिए राजी कर लिया कि सभा मेरे द्वारा लिखित स्वामीजी की जीवनी को छापेगी। समय कम था। मैं पुराने आलेख को आद्योपान्त पुनः लिखना चाहता था। वैदिक यंत्रालय के मैनेजर सतीषचन्द्र शुक्ल से मैंने यह वादा किया कि इस ग्रंथ का एक-एक अध्याय मैं उन्हें भेजूँगा और वे उसे छापते रहेंगे। मैं एक-एक अध्याय लिखता गया और चण्डीगढ़ से अजमेर भेजता गया। पुस्तक समय पर तैयार हो गई और निर्वाण शताब्दि समारोह में राजस्थान के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्रीशिवचरन माथुर ने इसका लोकार्पण किया। यह है नवजागर के पुरोधा के लेखक की पृष्ठभूमि।

मैंने इस ग्रंथ को लेखक और शोध के आधुनिक मानदंडों के आधार पर लिखा है। मैं स्वयं को इस लेखन का पात्र इसलिए समझता था, क्योंकि विगत पचास वर्षों में दयानंद ही मेरे अध्ययन, चिंतन और लेखन का प्रमुख विषय रहा था, मेरे पास एतद् विषयक विशाल सामग्री थी और हिन्दी का प्राध्यापक होने के कारण इस भाषा और लेखन-शैली पर मेरा अधिकार था। ग्रंथ की भाषा पूर्णतः साहित्यिक और ललित गद्य के मानदंडों के अनुकूल रही है। यथा प्रसंग उसमें भावुकता तथा काव्यात्मकता

निवेदन

चातुर्मास और विशेषकर श्रावण के महीने में यज्ञ-यागादि और स्वाध्याय की परंपरा बनी रहे, इसके लिए आर्य जगत् में वेद-प्रचार के कार्यक्रम रखे जाते हैं। इसी परंपरा में स्वाध्याय हेतु आर्य जगत् के विशिष्ट विद्वानों द्वारा रचित ग्रंथों की जानकारी अपने विश्लेषणात्मक लेखों में आदरणीय डॉ. भवानीलाल भारतीय जी ने कालजयी ग्रंथ के नाम से प्रकाशित करवाया है, जिसे आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा ने प्रकाशित किया है। उनमें से कुछ-एक विशिष्ट लेखों को स्वाध्याय हेतु इस अंक में श्रावण मास के संदर्भ में प्रकाशित किया जा रहा है। पाठक गण ज़रूर इसका स्वाध्याय कर मूल ग्रंथों का भी पुनः एक बार अवलोकन करेंगे ऐसी हमारी आशा है और विश्वास भी है, जिससे आर्य सिद्धांतों या वैदिक सिद्धांतों का प्रचार-प्रसार करने में सुविधा होगी।

www.thearyasamaj.org

महात्मा नारायण स्वामी रचित उपनिषद् रहस्य

भारतीय मनिषा का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण उपनिषद् है। ये अध्यात्मिक चिंतन के सर्वोत्कृष्ठ नवनीत है। प्रायः कहा जाने लगा है कि वेदों में मात्र कर्म-काण्ड का विवेचन है, जबकि सर्वोच्च दार्शनिक ज्ञान की चर्चा उपनिषदों में ही मिलती है। यह धारणा भी एकांगी है। वस्तुतः वेदों (मन्त्र संहिताएँ ही वेद हैं) मैं सर्व विद्याएँ मूल रूप में उपस्थित हैं। इसलिए स्वामी दयानंद सरस्वती ने उन्हें 'सब सत्य-विद्याओं की पुस्तक' बताया है। वेदों में जहाँ आध्यात्मिक तत्वज्ञान है, वहाँ लौकिक-सांसारिक विद्याओं की भी मूल रूप में विवेचना हुई है। इसी कारण मुण्डकोपनिषद में जहाँ परा और अपरा विद्याओं का प्रसंग आया, वहाँ ऋग्वेदादि को अपरा (सर्व विद्याओं का मूल होने से) कहा और पराविद्या के उल्लेख में किसी ग्रंथ-विशेष का नाम न लेकर इतना ही कहा- अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते। (१/५) पराविद्या वह है, जिससे उस अक्षर- अविनाशी ब्रह्म का ज्ञान होता है। उपनिषदों का महत्व दार्शनिक जगत् में सर्वात्र मान्य किया गया है। वेदांत - शास्त्रियों में तो इन्हें प्रस्थानत्रयी में (उपनिषद, ब्रह्मसूत्र और गीता) प्रथम स्थान दिया है और लगभग सभी वेदांत-सम्प्रदाय प्रवर्तकों ने अपने-अपने दृष्टिकोणों से इन पर भाष्य लिखे हैं। अन्य प्राचीन एवं नवीन विद्वानों ने भी उपनिषदों पर अपनी कलम चलायी है। स्वामी दयानंद ने सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम संस्करण (जो अब सर्वसुलभ नहीं है) में उपनिषदों के वाक्यों को भूरिशः उद्धृत किया है। उनके पश्चात् आर्य विद्वानों का एक बड़ा समूह रहा है, जिसमें इन ग्रंथों पर बाष्य लिखकर इन्हें सर्वसुलभ बनाया तथा जन-जन तक ऋषियों की ब्रह्म विद्या का प्रचार किया। ऐसे विद्वानों में स्वामी दयानंद के आद्य शिष्य पं. भीमसेन शर्मा (जो बाद में सनातनी खेमे में चले गये), महामहोपाध्याय पं. आर्यमुनि, पं. राजाराम, स्वामी दर्शनन्द, पं. बदरीदंत शर्मा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। महात्मा नारायण स्वामी के परवर्ती उपनिषद व्याख्यानकारों में स्वामी ब्रह्म मुनि तथा पं. सत्यव्रत सिद्धांतालंकार के नाम महत्व के हैं। गत शताब्दि के तीसरे दशक में महात्माजी ने अनेक स्थानों पर उपनिषदों की सरल, सुबोध तथा रोचक कथाएं प्रस्तुत की, तो लोगों का उनसे आग्रह रहा कि वे इन्ही कथाओं को पुस्तक का रूप दे दें, ता कि इस 'उपनिषद् रहस्य' को सभी पाठक पढ़ सकें। अपने श्रोताओं के इसी अनुरोध के कारण महात्माजी ने 'उपनिषद् रहस्य' के समान्य शीर्षक से ईश से आरम्भ कर तैत्तिरीयोपनिषद् पर्यंत आठ उपनिषदों का विशद भाष्य लिखा। तदनन्तर छान्दोग्य (१९३९ वि) तथा बृहदारण्यक १९४८ (२००५ वि) इन दो बड़े उपनिषदों पर भी भाष्य लिखे। उपनिषदों में आयी कथाओं और व्याख्याओं का सरल भाषान्तर उन्होंने 'उपनिषद कथा माला' के नाम से किया। महात्माजी ने उपनिषद् रहस्य के प्रकाशनाधिकार सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा को इसी कारण से सौंपे थे कि यह सभा आगे भी इनको निरंतर छापती रहेगी किन्तु कतिपय संस्करण छापनेके बाद सभा ने इसमें शिथिलता दिखाई। प्रत्येक उपनिषद का भाष्य लिखने के पूर्व लिखे उपोद्घात में विद्वान भाष्यकार ने आलोच्य उपनिषद् के कथ्य प्रतिपाद्य के महत्व का निरूपण किया। प्रथम ईशोपनिषद् स्वल्प परिवर्तन के साथ यजुर्वेद की काण्व शाखा का अन्तिम अध्याय है। वस्तुतः यह उपनिषद् ही ईश्वरोक्त है। अन्य तो भिन्न-भिन्न ऋषियों द्वारा लिखे गए हैं, जो विभिन्न ब्राह्मण ग्रंथों या अरण्यकों से पृथक् संकलित किए गए हैं।

शेष पृष्ठ ५ पर...

भी आयी है, किन्तु घटनाओं के विवेचन में कहीं पूर्वग्रह या अनावश्यक सुझाव नहीं है। मेरे सामने चुनौती यह थी कि क्या किसी महापुरुष की जीवनी उसके जीवन में घटी घटनाओं का दस्तावेज मात्र है। या इन घटनाओं के आधार पर रूपायित उसके चरित्र-विकास का प्रतिबिंब है? मेरे लिखे इस जीवन चरित् में दयानंद की जीवन में घटी घटनाओं से उस महापुरुष के चारित्रिक विकास तथा उसके व्यक्तित्व एवं विचारों में आए परिवर्तन को उभारा गया है, जो भी निष्कर्ष रह गए हैं, वे प्रमाणों पर आधारित है तथा मिथ्या कल्पनाओं को कहीं भी स्थान नहीं दिया गया है। आरम्भ में दयानंद के जीवन- लेखन के पूर्व प्रयत्नों की ऐतिहासिक पड़ताल कर उस आधारभूत सामग्री के महत्व का निरूपण किया गया है। दयानंद के आविर्भाव की पृष्ठभूमि में भारतीय नव जागरण की संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत करते हुए ब्रह्म समाज थियोसोफी आदि यथा प्रंग चर्चा की गई है। मेरा विचार है कि प्रत्येक पाठक में हर किसी पुस्तक को समधने की योग्यता नहीं होती। मेरे लिए गणित या रसायन की पुस्तक लैटिन और ग्रिक होगी। यह तथ्य मुझे तब समझ में आया, जब स्व-स्वामी रामेश्वरानंदजी ने मेरे इस ग्रंथ पर टिप्पणी करते हुए लिखा कि इसमें राजाराम मोहनराय आदि की चर्चा क्यों आई? ग्रंथ के शैलीगत सौंदर्य को भी वे नहीं समझते। मैंने यही कहकर मौन साध लिया कि किसी ग्रंथ को पढ़ने और समझने की पात्रता हर किसी में नहीं होती। इससे अधिक क्या कहता? साढ़े छह सौ पृष्ठों के महाग्रंथ पर बहुत कुछ लिका जा सकता है। मेरा प्रयास यही रहा कि इसे एक विश्वमानव के जीवन का प्रतिरूप बनाऊँ। मैं इसमें कहाँ तक सफल हुआ यह बताना सुधि पाठकों का काम है। मैंने अपने से पहले के जीवनी लेखकों से बहुत सहायता ली। वे सब मेरे प्रणम्य तथा वंदनीय थे और रहेंगे। उनके तथ्यों, तिथियों तथा नामादि में रहे स्खलनों को मैंने ठीक किया है। ग्रन्थान्त में जो परिशिष्ट। (१) विचार-विश्लेषण, (२) स्वामीजी के ग्रंथ, (३) स्वमीजी को समर्पित श्रद्धांजलियाँ (४) प्रसिद्ध शास्त्रार्थ, (५) संदर्भ ग्रन्थ सूची। दिये गये हैं। इनके पीछे मेरा वर्षों का परिश्रम तथा सामग्री का संग्रह दिखाई देता है। प्रत्येक अध्याय के अन्त में जो पाद टिप्पणियाँ दी गई हैं, उनके लिए प्रामाणिक जानकारी एकत्र की गई थी। प्रत्येक अध्याय के आरम्भ में मुखापाध्याय महाशय के ग्रंथ से दयानंद विषयक सुक्ति परक् - अनुच्छेद देने का विचार पर्याप्त बाद में आया इसलिए सभी अध्याय इन अलंकरणों से अलंकृत नहीं हो सके। पुस्तक की महत्ता का निर्णय तो भविष्य ही करेगा।

www.thearyasamaj.org

पं. रघुनन्दन शर्मा रचित वैदिक सम्पत्ति

मुंबई के सुप्रसिद्ध आर्य शेष्ठि तथा भारत की आज़ादी के आन्दोलन में अपना महत्वपूर्ण योगदान देने वाले स्व सेठ शूरजी वल्लभदास ने एक आर्य विद्वान पं. रघुनन्दन शर्मा का बृहद्काय (६५० पृष्ठ) ग्रन्थ वैदिक सम्पत्ति को प्रकाशित कराकर अशेष पुण्य कमाया। यह ग्रंथ वैदिक धर्मस, दर्शन आर्य इतिहास तथा आर्य सभ्यता विश्वकोश है। अब तक इसके अनेक संस्करण छप चुके हैं। नई पीढ़ी की तो बात नहीं करता, पुरानी पीढ़ी के आर्यो में इस ग्रंथ के अध्ययन का चाव और रुचि थी। इस ग्रंथ के लेखक रघुनन्दन शर्मा कानपुर के निवासी थे, किन्तु उनके जीवन के बारे में विशेष जानकारी नहीं मिली। सम्भवतः इस महाग्रंथ की रचना सेठ शूरजी वल्लभदास की प्रेरणा से हुई थी। प्रथम संस्करण के प्रकाशकीय निवेदन से ज्ञात होता है कि इसका मुद्रण कार्य १९३१ में पूरा हो चुका था, किन्तु विधिवत् लोकार्पण १९३३ में ऋषि दयानन्द की निर्वाण अर्द्ध शताब्दी के अवसर पर हुआ। सेठ शूरजी के वृद्ध पुत्र श्री प्रतापशूरजी ने मुझे बताया कि उनके पिता के कांग्रेस के तत्कालीन बड़े नेताओं से घरेलू सम्बन्ध थे। मुंबई आने पर ये नेता (गाँधीजी, नेहरू सरदार पटेल आदि) शूरजी के निवास कच्छ कौसल (आपेरा हाउस के पास) में ठहरा करते थे। कांग्रेस की कार्यकारिणी की बैठकें प्रायः यहीं से होती थी और आगत सदस्यों का आतिथ्य भार स्वयं शूरजी उठाते थे। इस स्वदेशभक्त परिवार को १९७५ में उस समय प्रचण्ड आगात लगा, जब आपातकाल के दौरान वहशी नेताओं ने प्रतापभाई पर एक बड़ी रकम काँग्रेस को देने के लिए दबाव डाला और इस स्वाभिमानी आर्य पुरुष ने इनकार कर देने पर उनकी कपड़ा मिलों में आग लगा दी गई और उन्हें अपरिमित आर्थिक क्षति पहुँचाई गई। वे तो प्रताप भाई को गिरफ्तार करना चाहते थे, किन्तु आर्य नेताओं के हस्तक्षेप से यह नहीं हो सका।

मैं बात कर रहा था वैदिक सम्पत्ति की। सेठ शूरजी ने इस ग्रंथ की भूमिका लिखने के लिए महात्मा गाँधी से अनुरोध किया। उस समय महात्माजी येरवदा जेल में थे। कारागार के अधिकारियों द्वारा बाधा पहुँचाने के कारण यह सम्भव नहीं हुआ। किन्तु जैसा कि सेठ शूरजी ने लिका है, महात्माजीने इस ग्रंथ की सामग्री की जानकारी प्राप्त कर प्रसन्नता प्रकट की थी, क्योंकि इसमें भारतीय वैदिक संस्कृति का जैसारम्य चित्र अंकित किया गया था, उससे गाँधीजी का वैमत्यता ही नहीं। वैदिक सम्पत्ति के चार संस्करण सेठ शूरजी के जीवनकाल में छपे और इस महान उपयोगी ग्रंथ को सर्वसुलभ बनाने की दृष्टि से इसका मूल्य १९५९ में छपे पंचम संस्करण तक मात्र छह रुपया रखा जाता रहा। ये सभी संस्करण वैदिक यंन्त्रालय, अजमेर में वर्ष १९२९ (१९८६ वि.), १९३९ (१९९६ वि.) १९४७ (२००४ वि.) १९५१ (२००८ वि.) तथा १९५९ (२०१६ वि.) में छपे। कालान्तर में इसके कॉपीराइट समाप्त होने पर वेद संस्थान, नई दिल्ली (पं. भारतेंद्र नाथ) तथा अनीता आर्ष प्रकाशन,पानीपत ने इसके दो संस्करण छापे। वैदिक सम्पत्ति के अध्ययन से पता चलता है कि इस महाग्रंथ की रचना के पीछे लेखक का कितना विस्तृत अध्ययन तथा चिंतन रहा होगा। लेखक ने अपने प्रतिपाद्य की सिद्धि में पौरस्त्य तथा पाश्चात्य लेखकों के पेरमाणों को प्रस्तुत करने में कोई अवकाश नहीं रका। यद्यपि कतिपय प्रसंगों के विवेचन में लेखक का पूर्वाग्रह तथा एक विशिष्ट नज़रिया दिखाई देता है। तथापि उसने अपने कथन की पुष्टि में प्रमाण जुटाने में कोताही नहीं की है। ऐसे कुछ प्रंग हैं - प्रस्थानत्रयी की पड़ताल। इस प्रकरण में लेखक ने उपनिषदों तता गीता में प्रक्षेपों की सम्भावना व्यक्त करते हुए वेदान्त सूत्र की रचना को काफी नवीन माना है। उसका विचार है कि साहित्य में घालमेल द्रविड़ों ने किया है और उन्होंने जानबूझकर हमारे ग्रंथों को दूषित कियौ। पं. रघुनंदन ने कृष्ण यजुर्वेद और तैत्तिरीय शाखा की प्रामाणिकता पर प्रस्नचिह्न लगाया है। अपने शोधकार्य के जो निष्कर्ष उन्होंने निकाले हैं, उनमें कुछ जातियों तथा वर्गों के प्रति लेखक की धारणा अन्याय की सीमा में प्रवेश करती दिखाई देती है। यथा महाराष्ट्र के चितपावन ब्राह्मणों (इसी जाति में तिलक और सावरकर पैदा हुए थे) के बारे में लेखक के विचार बहुतसे पाठकों को पक्षपात ग्रसित तथा अन्यायपूर्ण लग सकते हैं। यही बात कायस्थों के बारे में भी कही जा सकती है।

इन कुछ बातों को नज़रंदाज़ कर हम व्यापक दृष्टि से देखें, तो वैदिक सम्पत्ति की उपयोगिता सर्वस्वीकार्य है। चार खण्डों में विभक्त इस महाग्रंथ का आरम्भ वेदों की प्राचीनता को स्दिध करने से होता है। लेखक की दृष्टि से देखें, तो वैदिक संस्कृति की उपयोगिता सर्वस्वीकार्य है। चर खण्डों में विभक्त इस महाग्रंथ का आरम्भ वेदों की प्राचीनता को सिद्ध करने से होता है। लेखक की धारणा है कि आर्य संस्कृति सरलता, सादगी, तप, त्याग तथा समर्पण जैसे मूल्यों पर ज़ोर देने वाली संस्कृति थी। वेदों की प्राचीनता को सिद्ध करने के प्रसंग में लेखक ने वेदों में आये कतिपय कथित उपाख्यानों और इतिहास के सन्दर्भों की समीक्षा की है। यहीं पर लेखक ने आर्यो के उत्तर ध्रुव निवास की मान्यता को स्वीकार किया है। उनके विचार में आदि सृष्टि हिमालय में हुई थी। स्वामी दयानन्द मनुष्य का आदि निवास त्रिविष्टप (तिब्बत) में मानते हैं।

ग्रंन्थ का द्वितीय खण्ड वेदों की अपौरुपता को सिद्ध करता है। इस प्रसंग में लेखक ने तुलनात्मक भाषा शास्त्र, डार्विन के विकासवाद, लुप्त जन्तु शास्त्र जैसे विपयों की समीक्षा की है, जो उसके विस्तृत अध्ययन की सूचक है। यहाँ उसने भाषा विज्ञान, व्याकरण शास्त्र तथा अक्षर विज्ञान को आधार बनाकर जो निष्कर्ष निकाले हैं, वे उसकी मौलिक सूझ के परिचायक है । वेदों का सर्व विद्यामयत्व सिद्ध करते हुए लेखक ने इनमें आयुर्वेद, ज्योतिष, भूगोल, वास्तु विद्या, गणित, पदार्थ विज्ञान, आदि विधाओं के मूल को सिद्ध किया है। वेदों की उपेक्षा शीर्षक तृतीय खण्ड में लेखक ने जो लिखा है, वह उसके स्वतंत्र चिन्तन का परिणाम है। वह लिखता है कि आर्य लोग यद्यपि

मूलतः भारत के निवासी थे, किन्तु कई शताब्दियों बाद उनके कुछ समूह आर्यावर्त से बाहर चले गए। ये जब पुनः लौटकर आये, तब तक वे आर्यों के मूल विचारों को विस्मृत कर चुके थे। पुनः भारत में लौटे इन लोगों ने अपने विचारों और क्रियाओं में पुराने आर्यों की विचारधारा से अन्तर पाया और इसी कारण शास्त्रों में नाना प्रकार की अनिष्टकारी और अवांछनीय बातों का समावेश हो गया। लेखक ने इसे आर्य शास्त्रों में आसुर विचारधारा का मिश्रण कहा है तथा इसका सप्रमाण विवेचन किया है।

'वेदों की शिक्षा' शीर्षक चतुर्थ खण्ड वेदों के सार्वभौम स्वरूप की व्याख्या करता है। यहाँ भी उसने वेदों में पुनरुक्ति, प्रक्षेप, पाठ भेद जैसे विवादास्पद विषयों पर अपने विचार दिए हैं। इस प्रसंग में अथर्ववेद स्वरूप आर्य शास्त्रों में अपाततः प्रतीत होने वाली पशु हिंसा अश्लीलता,आदि के सन्दर्भों का विचार किया गया है। इसी खण्ड में विस्तारपूर्वक गृहस्थाश्रम, विवाह संस्कार, पुरुषार्थ चतुष्ट्य, आर्यों के घर, वेशभूषा, वस्त्राभूषण, भोजन आदि का विचार किया गया है। उपसंहार में आर्यों की सादगीयुक्त सभ्यता के विवेचन में लेखक का ज़ोर यह सिद्ध करने में है कि वैदिक सभ्यता का मूलाधार इन्द्रिय संयम, सादगी तथा जीवन को सात्विक गुण युक्त बनाना है। यह सत्य है कि आज का पाठक अध्ययन में कम रुचि लेता है और वैदिक सम्पत्ति जैसे भारी-भरकम ग्रंन्थों को पढ़ने में उसका मनोयोगपूर्वक लगना असम्भव-सा है। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर इसके दो अंशों को वेद-विज्ञान तथा वैदिक सभ्यता शीर्षक से पृथकतया प्रकाशित किया गया था। वैदिक सम्पत्ति पर आर्य समाजीपन की कोई छाप दिखाई नहीं देती।

पृष्ठ ५ का शेष ...

ईशोपनिषद् के अठारह मन्त्रों को महात्माजी ने चार भागों में विभाजित किया है। उनकी दृष्टि में प्रथम तीन मन्त्रों में पाँच कर्तव्य बताए गए हैं। येहैं - (१) ईश्वर को सर्वत्र विद्यमान मानना। (२) सांसारिक वस्तुओं का त्यागपूर्वक भोग करना (३) अन्यों के दन को न लेना (४) सफलाकांक्षा रहित नित्य कर्तव्य कर्म करना (५) अन्तरात्मा के विपरीत आचरण न करना। चौथे से आठवें मन्त्र तक ब्रह्म विद्या का उदात्त वर्णन मिलता है। यह अद्वितीय, अगोचर ब्रह्म कैसा है, यह बताना

इन पाँच मन्त्रों का उद्देश्य है। विद्या-अविद्या तथा संभूति-असंभूति विचार इस ग्रंथ का तीसरा भाग है, जिसमें मनुष्य क्या करें जिससे कि उसे अमरत्व की प्राप्ति हो, यह बताया गया है। अन्तिम दो मन्त्रों में सत्रहवाँ मनुष्य जीवन के अन्त समय में ओ३म् का स्मरण करने का विदान करता है और अन्तिम अठारहवाँ मन्त्र 'अग्ने नय सुपथा' प्रार्थनापरक है। भाष्यकार ने उपोद्घात में लिखा है कि ईशोपनिषद पर उन्होंने ४१ टीकाएँ पढ़ी हैं। इसकी आद्य टीका शंकराचार्यकृत है, जो अद्वैत सिद्धी के प्रयोजन से लिखी गई है। उपनिषद् रहस्य को आरम्भ में आचार्य धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री (गुरुकुल वृन्दावन के आद्य स्नातक) ने अपने पत्र 'प्रभात' में धारावाहिक प्रकाशित किया था।

केनोपनिषद् तलवकार शाखा का ग्रंथ है। इसका भाष्य १९२९ में नारायण आश्रम रामगढ़ (नैनीताल) में लिखा गया। महात्माजी के अनुसार आकार में लघु होने पर भी यह ब्रह्म विवेचन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। उपनिषदों की वेद-मूलकाता का उदाहरण देते हुए महात्माजी ने ठीक लिखा है कि उपनिषद् यजुर्वेद (४०।४) की इस उक्ति 'नैनद्देवा -आप्तुवन' का ही विस्तार है क्यों कि आख्यायिका का सहारा लेकर उपनिषद प्रणेता यही सिद्ध करते हैं कि परमात्मा को अग्नि, वायु और जल जैसे भौतिक देव नहीं जान सकते। कठोपनिषद् भाष्य की रचना १९३२ में हुई। इसे सार्वदेशिक सभा के कर्यालय बलिदान भवन (दिल्ली) में लेखक ने पूरा किया। महात्माजी की दृष्टि में यजुर्वेदीय काठक शाखा का यह ग्रंथ श्रेष्ठ और मनोरंजक है। क्या तो विषय विवेचन और क्या अभिव्यक्ति और वह भी काव्यात्मक, सभी दृष्टियों से कठोपनिषद् एक उत्कृष्ट कृति है और महात्मा नारायण स्वामी की टीका भी उतनी ही सरस तथा मनोत्र है। अथर्ववेदीय प्रश्नोपनिषद् का भाष्य महात्माजी ने १९३४ में लिखा। प्रशनोत्तरों के माध्यम से गुरु-शिष्यसंवाद शैली में लिखा गया यह ग्रंथ अध्यात्म विषयक छह प्रश्नों के उत्तर प्रस्तुत करता है।

परमात्म तत्व के गूढ़ किन्तु सारगर्भित विवेचन की दृष्टि से मुण्डकोपनिषद् का महत्व कम नहीं है। इसकी टीका महात्माजी ने स्वस्थापित नारायण आश्रम (रामगढ़) में १९३५ में लिखी। इसमें परा-अपरा विवेचन में जहाँ लेखक ने अपने सूक्ष्म चिंतन का सहारा लिया है, वहाँ प्रथम कर्मकाण्ड की प्रशंसा तथा बाद में यह कर्मों को कमज़ोर नौका के तुल्य बताकर उसकी आलोचना में प्रत्यक्षता दिखाई पड़ने वाले विरोध का सन्तोषप्रद समाधान भाष्यकार के विवेचन कौशल का परिचायक है। माण्डूक्योपनिषद् आकार में लघु (केवल १२ मन्त्र) है किन्तु ओ३म् की सर्वांगीण व्याख्या का ग्रंथ होने के कारण उतना ही महत्व का भी है। इस उपनिषद् की गूढ़ता का स्पष्टीकरण नारायणीय टीका से भली-भाँति हो जाता है।

ऐतरेयोपनिषद् भाष्य की रचना १९३८ में रामगढ़ में हुई। ऐतरेय ऋषि प्रणीत यह लघु रचना ऐतरेयारण्यक का भाग है। नाना रहस्यों से युक्त यह ग्रन्थ अल्पकाय होने पर भी किंचित दुरूहता लिये हैं। जिसे टीका के सहारे सरलता पूर्वक समझा जा सकता है।

यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा से संबंधित तैत्तिरीयोपनिषद् का भाष्य १९३८ में नारायण आश्रम में लिखा गया। शिक्षावल्ली, ब्रह्मानंद वल्ली तथा भृगुवल्ली शीर्षकों में विभक्त यह उपनिषद् वस्तुतः तैत्तिरीय अरण्यक के ७,८ और ९ प्रपाठक का ही रूप है। विषय वैविध्य तथा रोचक शैली इस ग्रंथ की विशेषता है। आरम्भ का मंगलपाठ (ओम् शन्नो मित्रः आदि) को स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के आरम्भ में यथावत् रखा है। पञ्च कोश विचार तथा आचार्य का दीक्षान्त अनुशासन इस उपनिषद् के उदात्त अंश हैं।

www.thearyasamaj.org

स्वामी श्रद्धानंद रचित कल्याण मार्ग का पथिक

हिन्दी का प्रथम आत्मकथा स्वामी दयानन्द की है, जिसे उन्होंने तीन किश्तों में लिखकर थियोसोफिस्ट (अंग्रेज़ी मासिक) में प्रकाशनार्थ भेजा। यह अपूर्ण है। आर्य समाज के तेजस्वी संन्यासी स्वामी श्रद्धानन्द ने अपनी आत्मकथा 'कल्याण मार्ग का पथिक' शीर्षक से लिखी, जो १९२४ (१९८१ वि.) में बाबू शिवप्रसाद गुप्त की संस्था 'ज्ञानमण्डल' काशी से प्रथम बार छपी। इसका सम्पादित संस्करण १९८७ में श्रद्धानंद ग्रंन्थावली के प्रथम खण्ड के रूप में छपा है। इस ग्रन्थावली का सम्पादन इन पंक्तियों के लेखक ने किया था। सम्पूर्ण ग्रंथावली ग्यारह खण्डों में है।

'कल्याण मार्ग का पथिक' स्वामी श्रद्धानंद की आत्मकथा के लिए पूर्णतया सार्थक नाम है। अपनी युवावस्था में मुंशीराम (श्रद्धानंद) चारित्रिक पतन की चरमावस्था तक पहुँच गए थे। ऐसा कौनसा दुर्गुण या दुर्व्यसन बचा था, जिसे इस युवक ने न अपनाया हो? माँस और मदिरा के सेवन के प्रति उनकी अनुरक्ति पराकाष्ठा पर थी। यार-दोस्तों की महफ़िल में जाकर वार-वनिताओं का गाना सुनना उनका शौक था। कॉलेज के दिनों में उन्होंने अंग्रेज़ी के घटिया दर्जे के ढेरों रोमांटिक उपन्यास पढ़े, उनसे उनके मन पर जो विषाक्त प्रभाव पड़ा, उसका उल्लेख उन्होंने स्वयं अपनी लेखनी से किया है। वे खुद अपने आपको एक ऐसा हीरो समझने लगे थे, जो किसी अबला नारी का उद्धार करने के लिए खलनायक को चुनौती देता है और उससे द्वंद्व युद्ध करने के लिए तैयार रहता है। वे स्वयं को पराकोटि का नास्तिक मानते थे। यद्यपि प्रारम्भिक जीवन में सैव धर्म के प्रति उनकी प्रबल आस्था थी, किन्तु काशी के विश्वनाथ मंदिर में पूजा के लिए जाने पर जब एक दिन उन्हें यह कहकर रोक दिया गया कि अभी रीवा राज्य की महारानी दर्शन करने गई हैं,इसलिए उनके लौट जाने के बाद ही उन्हें मंदिर में जाने दिया जाएगा। मुंशीराम की मूर्तिपूजा से आस्था हट गई। कुछ काल के लिए वे ईसाई मत की ओर आकृष्ट हुए, किन्तु एक नन (ईसाई साध्वी) तथा पादरी की यौन क्रीड़ा को देखकर वे इस मत से बेरुख हो गए और नीत्शे तथा हैकल जैसे अनीश्वरवादी यूरोपीय दार्शनिकों के विचारों के अध्ययन ने उन्हें नास्तिकता के गड्ढे में धकेल दिया। उच्चतर नैतिक और अध्यात्मिक मूल्यों में उनका विश्वास समाप्त हो गया और वे मानसिक स्थिति से स्वयं को अस्थिर एवं डावांडोल महसूस करने लगे।

इसी विषम परिस्थिति में युवक मुंशीराम की मुलाकात १८७९ में बरेली में महर्षि दयानन्द से होती है। इस महान् आस्तिक पुरुष से स्वल्प वार्तालाप ने ही उनके जीवन का नक्शा बदल दिया और आगे चलकर लाहौर में वे आर्य समाज के सम्पर्क में आए, आर्य समाजी बने तथा स्वयं को वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए समर्पित कर दिया। स्वामी दयानन्द से अपनी भेंट को इस आत्मकथा में स्वामी श्रद्धानंद ने विस्तारपूर्वक भावस्फूर्त शैली में वर्णित किया है। यह पठनीय प्रसंग है।

यह आत्मकथा स्वामी श्रद्धानंद के समग्र जीवन का वृत्तान्त नहीं है। इसमें १८९२ तक के प्रसंग वर्णित हुए हैं। इस समय तक बृहत्तर सार्वजनिक जीवन में उनका प्रवेश हुआ ही था और उनकी जावन यात्रा चौंतीस वर्ष (२३ दिसम्बर, १९२६ तक)और चली थी। सम्प्रति उपलब्ध आत्मकथा भी तान बार में लिखी गई। १८७६ तक का वृत्तान्त उन्होंने १९२२ में लिखा। आर्य समाज में प्रविष्ट होने (१८८४ - स्वामी दयानन्द के निधन के एक वर्ष बाद) से लेकर १८९२ तक का आठ वर्षों का वृत्तान्त उन्होंने 'सद्धर्म प्रचारक' पत्र में क्रमशः लिखा था। १८७६ और १९८४ के बीच के आठ वर्षों का वृत्तान्त उन्होंने मियांवली जेल में लिखाथा। काश । स्वामीजी अपनी आत्मकता को पूरा कर पाते, तथापि जो कुछ कल्याण मार्ग के पथिक में है, वह जीवन को ऊँचा उठाने वाला है। वे सचमुच स्वस्ति मार्ग के पथिक थे।

इस आत्म वृत्तान्त को स्वामी श्रद्धानन्द ने ऋषि दयानन्द के चरणों में समर्पित करते हुए लिखा - 'ऋषिवर, मैं तुम्हारा ऋणी हूँ, उस ऋण से उऋण होना चाहता हूँ। इसलिए जिस परम पिता की असीम गोद में तुम परम आनन्द का अनुभव कर रहे हो, उसी सेप्रार्थना करता हूँ, मुझे तुम्हारा सच्चा शिष्य वनने की शक्ति भी मिलेगी। इस ग्रंथ में स्वामी दयानन्द ने गोस्वामी तुलसीदास रचित रामचरित मानस की प्रशंसा करते हुए लिखा -

'आर्य संस्कृति के गिरे से गिरे समय में भी तुलसीदास आदि की रचनाओं ने आर्य संस्कृति को लुप्त होने से बचाया है।' बात यह थी कि स्वामीजी के पिता पुलिस इन्सपेक्टर लाला नानकचन्द 'मानस' के नियमित पाठक थे और पुत्र मुंशीराम पर जाने-अनजाने इस ग्रंथ का प्रभाव पड़ा था। भूमिका को स्वामी श्रद्धानंद ने 'मानस' की इस सूक्ति से समाप्त किया है -

जड़ चेतन गुणदोषमय विश्व कीन्ह करतार।

सन्तहंस गुण गहहिं पय, परिहारि बारि विकार।।

आर्य समाज के प्रारंभिक युग की उज्वल, गरिमामयी तथा शिक्षाप्रद झाँकी देखने के इच्छुक पाठकों को यह आत्मकथा अवश्य पढ़नी चाहिए। स्वमीजी स्वयं आर्य समाज के उस युग निर्माता ही थे। ग्रंथ में रोचक और मनोरंजक स्थलों की कमी नहीं है। स्वामीजी ने लिखा कि जब वे छोटे थे, ऋषि दयानंद का काशी में पदार्पण हुआ। वे इस संन्यासी को देखने के इच्छुक थे, क्योंकि विरोधियों ने प्रसिद्ध कर रखा था कि यह साधु यद्यपि वेदशास्त्रों में पण्डित है, किन्तु जादूगर है। दिन में इसके दोनों ओर मशालें जलती हैं। स्वामीजी की माताजी ने बालक मुंशीराम को उन दिनों घर से बाहर नहीं जाने दिया। इस भय से कि

www.thearyasamaj.org

देवेंद्रनाथ मुखोपाध्याय रचित दयानंद चरित्

यह कितने दुख और आश्चर्य की बात है कि जिस व्यक्ति ने ऋषि दयानंद के जीवन, व्यक्तित्व और कृतित्व के बारे में हमें भरपूर जानकारी दी, जिसने दयानंद के जीवन-विषयक तथ्यों और सामग्री-स्रोतों को एकत्र करने में अपना धन और समय ही नहीं लगाया अपितु अपने स्वास्थ्य की बलि दे दी। हम उस प्रणम्य महापुरुष के जीवन तथा कृतित्व के बारे में बहुत थोड़ा जानते हैं। मेरा आशय बांग्ला लेखक देवेंद्रनाथ मुखोपाध्याय से है, जो स्वयं आर्य समाज के पंजीकृत सदस्य न होने पर उसके संस्थापक के चरित्र और गुणों पर विस्मय-विमुग्ध रहे, यह तक कहने से नहीं चूके कि 'यदि दयानंद के सिद्धांतो की रक्षा के लिए मुझे अपना सिर भी कटाना पड़े, तो इसमें मुझे थोड़ा सा भी संकोच नहीं होगा।'

इन्हीं मुकोपाध्याय महाशय के बारे में हमारी जानकारी बहुत कम है। वे कहाँ, किस वर्ष, किसके घर में पैदा हुए, हम नहीं जानते। हमारी जानकारी इतनी ही हैकि वे बंगाल के प्रगल्भ लेखक थे। ईसाई संत पॉल की जीवनीलिखकर उन्होंने साहित्य जगत् मेंख्याति अर्जित की थी, किन्तु उनकी रचनाओं में मूर्धन्य स्थान पाया दयानंद चरित ने जो १८९६ में प्रकाशित हुआ। इसे स्वामीजी का प्रथम बड़े आकार का जीवन चरित् समझना चाहिए, क्योंकि पं. लेखराम द्वारा संग्रहित तथ्यों के आधार पर पं. आत्माराम अमृतसरी द्वारा सम्पादित उर्दू जीवन चरित १८९७ के अन्त में छपा था। किन्तु लेखक मुखेपाध्यायजी को अपनी इस प्रथम कृति से पूरा सन्तोष नहीं था। वे दयानंद के बारे में अधिकाधिक गटवथेणा कर एक वृहद् सर्वांगपूर्ण जीवन चरित् लिखना चाहते थे। एतदर्थ उन्होंने लगभग १५ वर्षों तक (१९०१ से १९१५) भात के उन स्थानों का भ्रमण किया, जो परिव्राजक दयानंद की पग-धुली से पवित्र हुए थे, उन लोगों से मिले या पत्र-व्यवहार किया, जो उणस अवदूत सन्यासी के सम्पर्क में आये थे, या उसका सत्संग प्राप्त किया था। उन्होंने हिन्दी, बांग्ला, गुजराती, मराठी तथा अंग्रेजी के उन सभी पद्दों को छान मारा, जिनमें स्वामी दयानंद संबंधी कोई समाचार, सूचना या संदर्भ छपा था। यह सब आधारभूत सामग्री एकत्र करके वे निश्चिंत भाव से काशी आये और ऋषि दयानंद का विषद जीवन लिखने में प्रवृत्त हुए। किन्तु होंनी को यह कब मंजूर था? अभी वे दण्डी विरजानंद की पाठशाला में दयानंद के अध्ययन के प्रसंग तक ही लिख पाये थे कि उन पर पक्षाघात का आक्रमण हुआ और इसी नगर में दस जनवरी, १९१७ को उनका निधन हो गया। स्वामीजी के जीवनी लेखन का कार्य अधूरा रह गया।

कहा जाता है। सुप्रसिद्ध इतिहासकार तथा राजनीतिज्ञ सर रमेशचन्द दन्त ने मुखोपाध्यायजी को स्वामी दयानंद का विषद जीवन चरित लिखने के लिए कहा था। जिस समय देवेंद्रबाबू दयानंद विषयक आरंभिक तथ्यों की खोज करने गुजरात गये, उस समय दत्त महाशय बडौदा के दीवान पद पर थे और उन्होंने मुखोपाध्यायजी को सामग्री संग्रह करने में सरकारी तौर पर सहायता दी थी। यहाँ यह बात भी ध्यान में रखने की है कि यदि देवेंद्र बाबू का परिचय मेरठ निवासी आर्य विद्वान पं.घासीरामजी से नहीं होता, तो उनके द्वारा लिखित साहित्य हिन्दी भाषी आर्य समाजियों से अपरिचित रह जाता। यह भी सुखद संयोग था कि पं. गासीराम बांग्ला जानते थे और उन्होंने उनकी बांग्ला कृतियों का हिन्दी अनुवाद किया और प्रकाशित कराया। जब १९१७ में देवेंद्रनाथ का निधन हुआ, तो इस दुखद समाचार को पाकर वे स्वयं बनारस गये और वहाँ के डिप्टी कलेक्टर राजा ज्वाला प्रसाद एम.ए. के प्रयत्न से उस सारी सामग्री को ले आये, जो देवेंद्र बाबू ने एकत्र की थी और जो उनके द्वारा लिखे जाने वाले बृहद् जीवन चरित के लिए आधार का काम करती। ज्ञातव्य है कि स्वयं मुखोपाध्यायजी ने इस ग्रंथ के चार अध्याय ही लिखे थे। शेष कार्य पं. गासीराम ने पूरा किया और १९३३ में दयानंद निर्वाण अर्ध शताब्दि के अवसर पर ऋषि दयानंद का यह सर्वाधिक प्रामाणिक जीवन चरित् छपा। यहाँ यह लिखना आवश्यक है कि यदि देवेंद्र बाबू ने गवेषणा नहीं की होती, तो हम ऋषि के जन्म ग्राम, मात-पिता, कुल-परिवार, बचपन के नाम तथा शैशव एवं किसोरावस्था की प्रमुख घटनाओं की प्रामाणिक जानकारी नहीं पा सकते थे। साथ ही यह भीलिकना आवशयक है कि इस अपूर्ण ग्रंथ की विस्तृत भूमिका लिखकर मुखोपाध्याय जी ने दयानंद के व्यक्तित्व एवं कार्य की विवेचना में एक महत्वपूर्ण आयाम जोड़ा है। दयानंद विषयक सैकड़ों ग्रंथों को पढ़कर मैने यह निष्कर्ष निकाला है कि क्रान्तदर्शी दयानंद के उदात्त चरित्र की जैसी व्याख्या,विवेचना और मूल्यांकन इस बंगाली ने किया है, वैसा अद्य पर्यमत कोई अन्य लेखक या विवेचक नहीं कर सका। मुखोपाध्यायजी कोई सामान्य लेखक नहीं ते। हम यदि बांग्रा जानते होते, तो उनके ललित, मनोज्ञ, भावनात्मक साथ ही प्रभावोत्पादक लेखनपर कुछ कहने के अधिकारी होते, किन्तु उनकी रचनाओं के अनुवादों को पढ़कर हमने यह मत बनाया है कि वे एक महान शैलीकार थे, बांग्ला गद्य को उन्होंने श्रीऔर लावण्य प्रदान किया है।

दयानंद के प्रति उनकी बक्ति दिव्यता तक पहुँच गई थी। अपने ग्रंथ की भूमिका में प्रसंगानुसार उन्होंने महर्षि के प्रति जो भाव व्यक्त किये हैं, वे सरर कायव्य की श्रेणी में रखे जाने योग्य हैं। यहाँ पाठकों के लिए प्रसाद रूप मेंऐसे ही दो-तीन अवतरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं :

'इस संन्यासी (दयानंद) के हृदय में यह प्रवल इच्छा और उत्साह था कि सारे भारतवर्ष में एक शास्त्र (वेद) प्रतिपिठित हो, एक देवता (परमात्मा) पूजित हो, एक जाति (आर्य) संगठित हो और एक भाषा (संस्कृत- हिन्दी) प्रचलित हो। .... स्वामी दयानंद केवल संन्यासी ही नहीं थे, केवल वेद-व्याख्याता ही नहीं थे, केवल शास्त्रों के मर्मोद्घाटन करने में ही निपुण नहीं थे, केवल दिग्विजयी पंडित हीनहीं थे, वह भारतीय (राष्ट्रीय) एकता के स्थपनकर्ता भी थे, भारत की जातीयता के प्रतिष्ठाता

www.thearyasamaj.org

डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार सम्पादित आर्य समाज का इतिहास (सात खण्डों में)

किसी देश के इतिहास की भाँति किसी संस्था का इतिहास लिका जाना भी आवश्यक होता है। जागरूक संस्थाएँ अपने अतीत को लेखबद्ध कराकर भावी पीढ़ियों के लिए उसे सुरक्षित कर लेती हैं। पं. शिवनाथ शास्त्री ने ब्रह्म समाज का वृहद् इतिहास लिखा, जो कलकत्ता के केंद्रीय ब्रह्म समाज द्वारा दो वार छप चुका है। काँग्रेस केइतिहास का लेखन इसी संस्था के अद्यक्ष पद पर रहे डॉ. पट्टाभि सीतारामैया ने कई खण्डों में लिखा है। यह विशाल ग्रंथ भारत की आज़ादी केलिए किए गए प्रयत्नों का एक प्रामाणिक दस्तावेज़ है। डॉ. रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर जैसै पुरातत्वज्ञ तथा प्राच्यविद्याविद् ने शैविज्म, वैष्णविज़्मएण्ड माइनर सैक्टस् ऑफ इण्डिया नामक ग्रंथ लिखकर मध्यकालीन हिन्दू सम्प्रदायों के इतिहास को सुरक्षित कर दिया है। सिखों ने इस विपय में अत्यन्त जागरूकता दिखाई है। पंजावी विश्वविद्यालय पटियाला, गुरु नानकदेव विश्वविद्यालय अमृतसर तथा पंजाव विश्वविद्यालय चण्डीगढ़ की गुरु नानक चेयर फॉर सिख स्टडीज़ सिख इतिहास पर अनेक ग्रन्थ प्रकाशित कर चुके हैं। केद है कि आर्य समाज जैसी युग-परिवर्तनकारी संस्था ने इतिहास लिखने-लिखाने में कोई रुचि नहीं दिखाई। एक-दो प्रयास व्यक्तिगत स्तर पर हुए। स्वमी श्रद्धानंद यदि इसमें रुचि नहीं लेते, तो शायद इतिहास लेखन के नाम पर हमारी उपलव्धि शून्य रहती। आर्य समाज के इतिहास के प्रति सर्वप्रथम जागरूकता स्वामी श्रद्धानन्द ने दिखाई थी। वे खुद आर्य समाज के उस युग के जीवित इतिहास तथा इतिहास के निर्माता थे। ऋपि दयानन्द के निधन के पश्चात् आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाव की स्थापना से लेकर वर्प १९२५ में ऋपि दयानन्द की जयंती मनाने तक चालीस वर्प की आर्य समाज की गतिविधियों के प्रत्यक्ष द्रष्टा तथा इस आंदोलन को गति एवं नेतृत्व देने वाले स्वामी श्रद्धानंद ने खुद आर्य समाज के इतिहास को लिखने के लिए पर्याप्त सामग्री जुटाई। और उसका एक खण्ड खुद लिखा। ज्यों-ज्यों स्वामीजी देश की आज़ादी की लड़ाई में आगे बढ़ते गए और दूसरी ओखऔर हिन्दू जाति के संगठन और शुद्धि के काम में तीव्रता लाते गए, उनके विरोधियों की संख्या बढ़ने लगी। अव उन्हें आभास हुआ कि शायद उनके जीवन के अधिक दिन नहीं वचे हैं, उधर वृद्धावस्था भी अपना रंग दिखा रही थी। स्वामीजी ने एक दिन अपने पुत्र और यशस्वी लेखक पं. इन्द विद्या वाचस्पति को समीप बुलाकर इतिहास विषयक सामग्री उन्हें सौंप दी। इस वचन के साथ कि वे आर्य समाज का वृहद् प्रामाणिक इतिहास अवश्य लिखेंगे। किन्तु परिस्थितिवश श्रद्धानंद के वलिदान के तीस वर्ष वाद तक इस कार्य में कोई प्रगति नहीं हुई। जव इन्दरजी स्वयं सार्वदेशिक सभा के प्रधान वने, तो उन्होंने अपने यशस्वी पिता के आदेश का पालन करते हुए दो खण्डों में आर्य समाज के इतिहास को लिखा, जो १९५६-५७ में इसी सभा से छपा। आज लगभग आदी सदी वीत जाने पर भीइस ग्रंथ का दूसरा संस्करण आर्यों की यह शिरोमणि सभा नहीं निकाल सकी है। पं. हरिश्चन्द विद्यालंकार ने एक लघु इतहास अवश्य लिखा, जो आर्यकुमार परिषद द्वारा संचालित धार्मिक परीक्षाओं में वर्षो तक पढ़ाया जाता रहा। इन पंक्तियों के लेखक ने इस पुस्तक को पढ़कर १९५० में सिद्धान्त शास्त्री की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की थी। यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी थी।

प्रसिद्ध लेखक तथा इतिहास के विद्वान डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार ने अपनी आयु के आठवें दशक में पहुँचने पर आर्य समाज का इतिहास लिखने का मानस वनाया। इससे पहले वे इतिहास तथा अन्य विपयों पर दर्जनों पुस्तकें लिखकर पर्याप्त धन एवं यश कमा चुके थे। 'मौर्य साम्राज्य का इतिहास' के लेखन पर उन्हें हिन्दी साहित्य सम्मेलन का 'मंगलाप्रसाद पुरस्कार' मिल चुका था। उन्हें डॉक्टर की उपाधि पैरिस (फ्रांस) विश्वविद्यालय ने दी थी। १९८१ में गुरुकुल काँगड़ी के वार्षिकोत्सव पर जव मेरी उनसे भेंट हुई, तो वेआर्य समाज के सप्तखण्डात्मक इतिहास की पूरी योजना वना चुके थे। एक वर्ष पूर्व उन्होंने इसके लिए एक सम्पादक मंडल का गठन किया, जिसका मैं एक सदस्य था। वाद में यह सम्पादक मंडल भंग कर दिया गया, किन्तु इतिहास लेखन में मेरा उनसे पूर्ण सहयोग रहा। १९८१ की इस मुलाकात में मैंने जवह उनसे पूछा कि अन्य विपयों पर प्रचुर मात्रा में लिखने के पश्चात अव वृद्धावस्था में उन्हें आर्य समाज के इतिहास को लिकने का विचार कैसे आया, तो उन्होंने उत्तर दिया -'सच तो यह है कि मैंने वहुत कुछ लिखा और उससे दन भी कमाया। अव शरीर के शिथिल होते जाने पर मेरे मन में विचार आया - भले आदमी, तीने अपनी मातृसंस्था आर्य समाज के लिए क्या लिखा? क्या दो शव्द भी इस संस्था के लिए लिखे, जिसके लिए गुरुकुल में तुमने शिक्षा पाई और स्नातक वना। वस, सच पूछो तो भारतीयजी, पश्चाताप की इसी भावना ने मुजे आर्य समाज के इतिहास के लिकने के लिए तत्पर किया।

डॉ. सत्यकेतु ने अपने निश्चय को पूरा किया, और १९८२ से १९८८ तक के सात सालों में न्यूनाधिक सात हज़ार पृष्ठों में समाप्त आर्य समाज का यह सात खण्डों का इतिहास छपकर पाठकों के सामने आ गया। इस विधि विडम्वना के सिवाय और क्या कहा जाए कि इधर तो इतिहास का काम समाप्त हुआ और उधर डॉ. सत्यकेतु की जीवनयात्रा भी पूरी हुई। दिल्ली से हरिद्वार जाते हुए मोटर दुर्घटना में वे १९८९ में परलोक सिधारे।

ज्डॉ. सत्यकेतु ने इस महाग्रंथ के छपवाने व्यवस्था स्वयं के पुरुपार्थ से की और आर्य स्वाध्याय केन्द्र की स्थापना कर इसे छपवाया। इसका प्रथम खण्ड १९८२ में प्रकाशित हुआ। इसमें सृप्टि के आदिकाल से लेकर स्वामी दयानन्द कोथे निधन तक का इतिहास विस्तार से वर्णित हुआ है। भारत के पुनर्जागरण का इतिहास आर्य समाज की स्थापना की पृष्ठभूमि के रूप में अत्यन्त

विस्तार तथा प्रामाणिक सामग्री के आधार पर लिखा गया है। स्वामी दयानन्द का जीवन वृत्तांत लिखने में भी पर्याप्त श्रम किया किया गया है तथा स्वामीजी की कथित अज्ञात जीवनी की असत्यता को उद्घाटित करने में वे असफल रहे हैं। इस विषय पर उनसे मेरी बहस भी हुई थी किन्तु वे कोई समाधानकारक उत्तर नहीं दे पाए। १९८३ में इतिहास का तीसरा खण्ड निकला। इसमें आर्य समाज की शिक्षा जगत् को देन की विवेचना की गई है। आर्य समाज ने डी.ए.वी. संस्थाएं तथा गुरुकल आन्दोलन, इस प्रकार दो प्रणालियों के द्वारा भारत के शिक्षा जगत् को अपनी देन दी है। इस खण्ड में डॉ. सत्यकेतु के सह लेखक पं. हरिदत्त वेदालंकार ते। यह खण्ड पर्याप्त परिश्रमपूर्वक प्रामाणिक सामग्री के आधार पर लिखा गया है।

इतिहास का तीसरा खण्ड १९८४ में छपा। वास्तव में आर्य समाज के इतिहास का आरम्भ यहीं से माना जाना जाना चाहिए। इसमें दयानन्द सरस्वती के निधन से लेकर बारत को स्वराज्य मिलने तक के इतिहास को लेखबद्ध किया गया है। वस्तुतः आर्य समाज का यही स्वर्णयुग था। चौंसठ वर्ष के इसी कार्यकाल में आर्य समाज का विस्तार हुा तथा हैदराबाद सत्याग्रह एवं सिंध में सत्यार्थ प्रकाश के प्रतिवन्ध के विरोध में छेड़े गए संघर्ष की घटनाएँ घटी।

चौथा खण्ड (१९८५) आर्य समाज और राजनीति विषयक है। डॉ. सत्यकेतु के अतिरिक्त इस लेखन में पं. हरिदत्त वेदालंकर तथा डॉ. भारतीय का सहयोग रहा। १८७५ से १९२६ तक की भारतीय राजनीति तथा राजनीतिक संघर्षों में आर्य समाज की प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष भूमिका को यहाँ विस्तार से लिखा गया है। पाँचवें खण्ड का अधिकांश (लगभग ४२५ पृष्ठ) मेरे द्वारा लिखा गया। यह आर्य समाज के साहित्य का प्रामाणिक तथा विस्तृत विवरण है। कुछ पृष्ठ पं. हरिदत्तजी ने भी इसमें जोड़े हैं। यह खण्ड १९८७ में छपा।

इतिहास का अन्तिम खण्ड १९८८ में छपा। इसमें समसामयिक घटनाओं, सभा-संस्थाओं तथा कतिपय आयोजनों का स्थूल विवरण मात्र है। विस्लेषण, विवेचन विरल है। ऐसा लगता है कि सभा-संस्थाओं ने इतिहास में अपना नाम दर्ज कराने मात्र के लिए जो लेख भेजा, उसे इसमें स्थान मिल गया। इसके औचित्य-अनौचित्य का विचार नहीं किया गया। यह खण्ड १९८७ में छपा।

इतिहास का अन्तिम खण्ड १९८८ में छपा। इसमें समसामयिक घटनाओं, सभा-संस्थाओं तथा कतिपय आयोजनों का स्थूल विवरण मात्र है। विश्लेषण, विवेचन विरल है। ऐसा लगता है कि सभा-संस्थाओं ने इतिहास में अपना नाम दर्ज कराने मात्र केलिए जो लेख भेजा, उसे इसमें स्थान मिल गया। इसके औचित्य अनौचित्य का विचारनहीं किया गया।तथापि डॉ. सत्यकेतु का यह महाग्रन्थ उनके लिए कीर्तिदायक सिद्ध हुआ। यह दूसरी वात है कि ७००० पृष्ठों की इस सामग्री को आद्योपान्तकितने लोगों ने पढ़ा?

पृष्ठ ९ का शेष...

भी थे।' दयानंद का जीवन और साहित्यक्यों पठनीय है? देवेंद्र के उत्तर को सुने - 'जिनका (ददयानंद का) दार्मिक जीवन अशेष अभिज्ञता के ऊपर प्रतिष्ठित था, जिनकी शास्त्रदर्शिता, तार्किकता, मनस्विता, सब प्रकार से असाधारण थी, और विशेषतः जिनके निष्कपट ब्रह्मचर्य का प्रभाव उस शास्त्रदर्शिता, तार्किकता और मनस्विता ।को उज्वल और सुतीक्ष्ण बनाता था, उनके मुख से निकला हुआ एक उपदेश नहीं, वरन् एक-एक शब्द लिपिबद्ध करन, मनुष्य की आलोचना करने तथा संसारके कल्याणार्थ प्रचार करने योग्य है।' इसी प्रसंग में वे लिखते हैं : 'उन्होंने (दयानंद) कौपिनधारी संन्यासी होते हुए भी इस बात को सुस्पष्ट रूप से जान लिया था कि जब तक संन्यासी जनों का वल नहीं बढ़ेगा, स्वदेश में जातीयता प्रतिष्ठित नहीं होगी, जाति के अन्दर एकता का बंधन दृढतर न होगा, तब तक धर्म-संस्कार,सास्त्र संस्कार, देशोन्नति, समाजोन्नति आदि कुछ भी न होगी।' देवेंद्र बावू के दोनों दयानंद चरितों (१८८६ तथा १९३३ में प्रकाशित) को गोविंदराम हसानंद ने पुनः प्रकाशित किया है। दयानंद चरित् के अतिरिक्त मुखोपाध्यायजी ने 'दण्डी विरजानंद का जीवन चरित्' लिखा, 'आदर्श सुधारक दयानंद' की रचना की तथा 'दयानंद के जन्मस्थान आदि का निर्णय' शीर्षक प्रथक् पुस्तक लिखकर इन विषयों के वारे में स्वयं की शोध को लिपिवद्ध किया है।

पृष्ठ ८ का शेष ..

कहीं लड़का इस जादूगर के फन्दे में न फँस जाए। अब जब वे सचमुच दयानन्द के अनुयायी बन गए, तो लिखा - 'माताजी को क्या मालूम था कि उनके देहान्त के पीछे उनका प्यारा बच्चा उसी जादूगर का (बरेली में दिए उपदेश को सुनकर) अनुयायी बन जाएगा।'

शास्त्रार्थों के युग में प्रतिद्वंद्वी पौराणिक पण्डित किस प्रकार वाक्छल, सही अर्थ में धूर्तता और चालाकी से प्रसंग को अपने पक्ष में मोड़ने का दुस्साहस करते थे। इसका रोचक उदाहरण स्वामीजी ने यहाँ दिया है। उन दिनों सनातनी पं. दीनदयालु शस्त्री (जनसंघ के संस्थापकों में से एक पं. मौलीचंद्र शर्मा के पिता) का बोलवाला था। वे एक बार जालंधर आए और लगे आर्य समाज के बारे में अंट-संट कहने। इस पर लाला मुंशीराम ने उन्हें शास्त्रार्थ की लिखित चुनौती दी और खुद भी शास्त्रीजी की सभा में चले गए। संयोग ऐसा बना कि सनातन धर्मसभा के प्रधान लालजी को पहचानते थे, जवकि पं. दीनदयालु ने उन्हें कभी देखा नहीं था। सनातन सभा के प्रधान लाला मुंशीराम का स्वागत किया (जालंधर के प्रतिष्ठित नागरिक तथा आर्य समाज के पत्र को बीच-बीच में छोड़कर कटाक्षपूर्ण पढ़ना आरम्भ किया।अपने मतलव की वात तो पढ़ना और कुछ को न पढ़ना, यह चालाकी मुंशीराम ने समझ ली। उन्होंने बीच में टोककर कह दिया - ' पं. जी बीच-बीच में कुछ और है, उसे भी तो पढ़िए।' दीने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि शास्त्रार्थ की चुनौती का पत्र लेखक (मुंशीराम) उनके समाने वैठा है और उनकी चालाकी को पकड़ चुका है। लालाजी के शब्दों में 'मेरे इस कथन पर खलवली मच गई। सनातन सभा के सभापति ने दीनदयालु जी के कान में कहा- खुद लाला मुंशीराम सभा में आए हैं और वे ही पत्र के लेखक हैं, जिसे तोड़-मरोड़कर आप पढ़ रहे हैं। पं. दीनदयालु संभले, किन्तु उनकी चालाकी बरकरार रही। अब वे शास्त्रार्थ की बात को छोड़कर एक घण्टे तक वैराग्य के विषय पर बोलते रहे, किन्तु समझदार लोग उनकी चतुराई को भाँप चुके थे।

www.thearyasamaj.org

पं. शिवशंकर शर्मा रचित 'निर्णय' शीर्षक ग्रंथ माला

शास्त्र५ विद्वानों को जन्म देने में बिहार का उत्तर पूर्वी भाग मिथिला सदासे उर्वर रहा है। पुराकाल में यहाँ वाचस्पति मित्र जैसे विद्वान् हुए, जिन्होंने सभी शास्त्रों पर समान रूप से व्याख्याएँ लिखीं। यहीं पर उदयनाचार्य जैसे नैयायिक हुए, जिन्होंने ईश्वर सिद्धि का अपूर्व ग्रंथ कुसुमांजलि लिखकर वौद्धों के अनीश्वरवाद के प्रसाद को ताश के पत्तों की तरह बिखेर कर रख दिया। इसी धरती से उन्नीसवीं शताब्दी में पं. शिवशंकर ने दक्षिण शर्मा जैसे प्रज्ञा पुरुष को जन्म दिया, जिन्होंने संस्कृत के धुरीण पं. अम्बिका दत्त व्यास से अध्ययन कर अपनी विद्या को पूरा किया। शीघ्र ही उन्हें स्वामी दयानंद की वैदिक विचारधारा का परिचय मिला और वे आर्य समाज के सक्रिय प्रचारक बन गए। मिथिला पुराणपंथी विचाराधारा का केंद्र रहा है, अतः पं. शिवशंकर ने दक्षिण बिहार (अब झारखंड) के राँची शहर को केंद्र बनाकर धर्म प्रचार किया।

१९०३ में वे बिहार से अजमेर आये। यहाँ स्वामी दयानंद द्वारा स्थापित परोपकारिणी सभा शास्त्रसंशोधन कार्य के लिए एक योग्य विद्वान की अपेक्षा थी। पं. शिवशंकर को यह कार्य मिल गया , तो वे अजमेर में रहकर शास्त्र संशोधन के साथ-साथ ग्रंथलेखन के कार्य में लग गये। छान्दोग्य और बृहद अरण्यक उपनिषदों पर विस्तृत संस्कृत तथा हिन्दी भाष्य का उनकी मनीषा का श्रेष्ठ उदाहरण है। १९०६ में हम शर्माजी को पंजाव की राजधानी लाहौर में देखते हैं। यहाँ वे पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा के उपदेशक वन गए और उनका व्याख्यान एवं लेखन का काम साथ-साथ चलता रहा। सभा के अधिकारियों के परामर्श से पं. शिवशंकर शर्मा ने 'निर्णय' शीर्षक पाँच ग्रंथों की ग्रंथमाला तैयार की और ओंकार निर्णय, जाति निर्णय, वैदिक इतिहासार्थ निर्णय, श्राद्ध निर्णय तथा त्रिवेद निर्णय शीर्षक ग्रंथ क्रमशः १९०६, १९०७, १९०९ तथा १९१३ में प्रकाशित हुए। अभी हाल में उनके एक ग्रंथ त्रैतसिद्धांतादर्श की पांडुलिपि को रामलाल कपूर ट्रस्ट ने प्रकाशित किया है, जो इस ट्रस्ट के संग्रहालय में रखी थी। यहाँ निर्णय शीर्षक उक्त ग्रंथों पर कुछ विस्तार से लिका जा रहा है।

१) ओंकार निर्णय : परमात्मा के सर्वोपरि श्रेष्ठ नाम प्रणवाख्य ओ३म् का उल्लेख प्राचीन एवं नवीन सभी शास्त्रों में सर्वत्र मिलता है। यजुर्वेद में 'ओ३म् खं ब्रह्म' तथा ओ३म् कृतो स्मर की सूक्तियाँ मिलती हैं, तो उपनिषदों में उसे परम काम्य तथा इष्ट वताया गया है। 'सर्वे वेदा यत्पद माम नन्ति' की कण्ठश्रुति कहती है कि सारे ओ३म् की गूढ़ दार्शनिक व्याख्या वर्णित है, तो छान्दोग्यपनिषद ने उद्गीथ रूपी ओ३म् का गायन करने का आदेश दिया है। गीता ने ओ३म् को एकाक्षर ब्रह्म कहा, जबकि योगदर्शन ने प्रणव रूपी ओंकार को परमात्मा का वाचक बताकर उसके अर्थ का चिंतन करते हुए जप करने का आदेश दिया। आलोच्य ग्रंथ में लेखक ने ओंकार विषयक विभिन्न सास्त्रीय संदर्भों का सतर्क विवेचन किया है।

२) जाति निर्णय : इस ग्रंथ का प्रथम संस्करण १९०७ में आर्य प्रतिनिधि सवा, पंजाब ने प्रकाशित किया। इसे वेदतत्व प्रकाश ग्रंथ माला का तीसरा खण्ड कहा गया है। आलोच्य ग्रंथ में जन्मगत जाति के सिद्धांत का खंडन तथा वर्ण-व्यवस्था के गुण, कर्म पर आश्रित होने को पुष्ट किया गया है। यह ग्रंथ पाँच प्रकरणों में विभाजित है। प्रथम प्रकरण में वेदों में आये आर्य तथा तस्यु पदों का वास्तविक अभिप्राय स्पष्ट किया है। द्वितीय प्रकरण में वेदों में आये विभिन्न व्यवसायों और पेशों की तार्किक मिमांसा यह निश्चित किया गया है कि व्यवसाय के आधार पर वेद मनुष्य के ऊँचे या नीचे होने को मान्य नहीं करता। तृतीय प्रकरण में पुरुषाध्याय (यजुर्वेद का ३१ वाँ अध्याय) के वाह्य ब्राह्मणोस्य मुखमासिद मंत्र की विस्तृत समालोचना की गई है। चौथे प्रकरण में वर्ण एवं जाति विषयक अनेक स्फूट प्रश्नों का समाधान किया गया है। पंचम प्रकरण में गुण-कर्मानुसार वर्ण सिद्धांत को सम्पुष्ट किया गया है। अपने विषय का यह श्रेष्ठ ग्रंथ है।

३) वैदिक इतिहासार्थ निर्णय : -

महर्षि व्यास ने अपने ग्रंथ निरुक्त में इस सिद्धांत को प्रतिपादित किया था कि वेदोंमें आये सभी पदों का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ लिया जाना चाहिए, रूढार्थ नहीं। स्वामी दयानंद की भी यही मान्यता थी। वेदों में कोई लौकिक या अनित्य इतिहास नहीं है। वहाँ जो प्रतीयमान राजाओं ऋषियों, नदियों, पर्वतों आदि के नाम आते हैं। वे किसी लौकिक पदार्थ के वाचक नहीं हैं। वेदों में प्रत्यक्षतया जो आख्यायिकाएँ और उपाख्यान वर्णित हुए हैं, उनके अर्थ करने में सावधानी वरतनी चाहिए। इस प्रकार यम-यमी संवाााद, पुरुरवा । उर्वशी उपाख्यान तथा विश्वामित्र-नदी संवाद आदि प्रकरणों के अर्थ करने में विभिन्न भाष्यकारों ने क्या गलतियाँ की हैं, इसे स्पष्ट करते हुए विद्वान लेखक ने वेदों में किसी प्रकार के लौकिक इतिहास का निषेध किया है। कालांतर में स्वामी ब्रह्ममुनि तथा पं वैद्यनाथ शास्त्री आदि विद्वानों ने वेदों में प्रतीयमान इतिहास के मत का खंडन कर वेदों में नित्य इतिहास की सत्ता को पुष्ट किया है।

४) श्राद्द निर्णय : स्वामी दयानंद के पंचमहायज्ञों के अंतर्गत पितृयज्ञ के संवंध में विचार प्रस्तुत करते हुए कहा था कि श्राद्ध और तर्पन आदि कृत्य जीवित माता-पिता-पितामह आदि के लिए होते हैं। मृत पितरों से हमारा संवंध तभी खत्म हो जाता है, जव वे अपना शरीर त्याग कर देते हैं। वेदों में पितृयज्ञ संवंधी सैंकड़ों मंन्त्र आते हैं तथा 'अग्रिष्वाता' तथा अन्य नामों में उनका वर्गीकरण किया गया है। पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर ने इन पितृयज्ञ विधायक मंत्रों को मृत पितरों के प्रति इति कर्तव्यों के रूप में व्याख्यायित किया, जवकि स्वामी दयानंद

www.thearyasamaj.org

पं. गंगा प्रसाद जज रचित

फाउण्टेन हेड ऑफ रिलीजन (धर्म का आदि स्रोत)

संसार के प्रचलित धर्मों (सही अर्थ में मतों, मज़हबों) का आदि मूल वेद निरूपित धर्म है। इस सार्वभौम तथ्य को सत्य सिद्ध करने का प्रयास पं. गंगा प्रसाद जज ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ फाउण्डेन हेड ऑफ रिलीजन में किया है। वैदिक धर्म के पश्चातवर्ती बौद्ध, पारसी, यहूदी, ईसाई तथा इस्लाम इन पाँच मतों के ग्रंथों का तुलनात्मक अध्ययन कर वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि कालक्रम की दृष्टि से वेद प्रतिपादित धर्म संसार का प्राचीनतम धर्म है। कालांतर में पृथ्वी पर फैले उपयुक्त बौद्धादि पाँचों मतों की मूल शिक्षाएँ किसी न किसी रूप में वेदों से निकली हैं। गंगा प्रसाद जज (१८७१-१९६६) मूलतः मेरठ के रहने वाले थे। १८९३ में एम.ए. करने के पश्चात वे संयुक्त प्रांत (उत्तर प्रदेश) की प्रशासनिक सेवा में रहे। पश्चात १९२२ से १९३१ तक टिहरी राज्य में मुख्य न्यायाधीश के पद पर कार्य किया। वे सार्वदेशिक सभा के प्रधान रहे तथा परोपकारिणी सभा के सदस्य के रूप में महर्षि दयानंद की उत्तराधिकारिणी सभा की प्रवृत्तियों में रुचि लेते रहे। १३ जनवरी १९६६ को जयपुर में उनका निधन हुआ। फाउण्टेन हेड ऑफरिलीजन का प्रथम संस्करण १९०९ में ट्रैक्ट विभाग, आर्य प्रतिनिधि सभा, संयुक्त प्रांत से प्रकाशित हुआ। इससे पहले यह ग्रंथ धारावाहिक रूप से 'वैदिक मैग्जिन एण्ड गुरुकुल समाचार' में छपा। इन पंक्तियों के लेखक के संग्रह में १९०७ ई.) की उक्त पत्र की फाइल है। श्रावण, भाद्रपद १९६४ ई. के अंक में इस ग्रंथ का पाँचवाँ अध्याय छपा है। इस अध्याय में पारसी मत का मूल वैदिक धर्म सिद्ध किया गया है।

यह पुस्तक छपने के साथ लोकप्रियता की सारी सीमाओं को पार कर गई। इसके दो अन्य संस्करण १९११ तथा १९१६ में छपे। आर्य समाज-मद्रास ने इसे १९४१ में प्रकाशित किया। लेखक के परम मित्र मेरठ निवासी पं. घासीराम ने इसका उर्दू अनुवाद सर चश्मे मजाहिद शीर्षक से किया, जो संयुक्त प्रांत की आर्य प्रतिनिधि सभा से १९१९ में छपा। इसी सभा में हिन्दी अनुवाद के लिए पं. हरिशंकर शर्मा से निवेदन किया और १९१७ में यह ग्रंथ धर्म का आदि स्रोत शीर्षक से छपा। आर्य साहित्य मंडल, अजमेर ने भी इसे प्रकाशित किया है। परिचयात्मक भूमिका तथा उपसंहार (निश्कर्ष) सहित यह ग्रंथ पाँच अध्यायों तथा अनेक उपविभागों में विभक्त है। प्रथम अध्याय में लेखक की स्थापना है कि मुसलमानी मत का आधार विशेषतः यहूदी मत है। इसे अध्याय में कुरान के मी. सेल कृत अंग्रेज़ी अनुवाद को अपने विवेचन का मुख्य आधार बनाया गया है।

द्वितीय अध्याय में लेखक की प्रतिज्ञा है - ईसाई मत का आधार विशेषतः यहूदी मत और अंशतः बौद्ध मत है। ईसाईयत पर बौद्ध मत के मुख्य प्रभाव को सिद्ध करने के लिए लेखक ने प्रसिद्ध इतिहासकार रमेशचंद्र दत्त के ग्रंथ प्राचीन भारतीय सभ्यता से सहायता ली है। यह एक सर्वस्वीकृत मत है कि यहूदी, ईसाई तथा इस्लाम ये तीन मत समैतिक मज़हब कहलाते हैं। जिनमें एक इल्हामी किताब, पैगंबर की अवदारणा तथा व्यक्तिगत ईश्वर की मान्यता को स्वीकार किया गया है। लेखक ने बुद्ध और ईसा के वचनों को तुलनात्मक शैली में प्रस्तुत कर बताया है कि ईसाइयत की अधिकांश नैतिक शिक्षाएँ बौद्ध धर्म के ग्रंथ धम्म पद में उल्लेखित शिक्षाओं से मिलती है।

तीसरे अध्याय में बौद्ध मत का आधार वैदिक मत सिद्ध किया गया है। लेखक ने ऐतिहासिक प्रमाणों से बताया कि बौद्ध मत एक स्वतंत्र मत का रूप क्यों ले सका? जबकि इस मत की अदिकांश नैतिक मान्यताएँ वैदिक धर्म के अनुकूल हैं। यह दूसरी बात है कि वेदों के प्रामाण्य तथा कतिपय दार्शनिक सिद्धांतों में बौद्ध और वैदिक मत के पार्थक्य को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। प्रचलित सनातन धर्म की यह खूबी है कि उसने विद्रोह के तेवर को अपनाने वाले गौतम बुद्ध को विष्णु की नौंवा अवतार घोषित कर इस विचारधारा के क्रांतिकारी रूप का शमन कर दिया। ग्रंथ का चौथा अध्याय सिद्ध करता है कि यहूदी मत का आधार पारसी (जरदुश्ती मत) धर्म है। ईश्वर और शैतान इन दो बराबर ताकद रखने वाली शक्तियों की अवधारणा सर्वप्रथम हमें पारसी मत में दिखाई पड़ती है। यहाँ अहुरमज्दा (यहूदी मत का येहुवा) ईश्वर है और अंगीरामन्यु शैतान का प्रतीक है। भगवदीय तत्व तथा असुरी तत्व का द्वैत, द्वंद्व तथा शत्रुवत् भाव जरदुस्ती धर्म में प्रचलित हुआ। पारसी मत की विवेचना के लिए लेखक ने इस मत के मान्य ग्रंथ जेदावेस्ता तथा मार्टिन हाँग के पारसी मत विषयक निबंधों का आधार लिया। पाँचवाँ और अंतिम अध्याय जहाँ कलेवर में बड़ा है, वहाँ इस तथ्य को रेखांकित करता है कि जरदुश्ती मत की अधिकांश मान्यताएं वैदिक धर्म की मान्यताओं के समान हैं। प्रथम लेखक ने संस्कृत जैंद भाषा की तुलना कर दोनों में समानता को तलाशा। तत्पश्चात धर्म और दर्शन विषयक दोनों मतों की धारणाओं की विस्तार से तुलना कर सिद्ध किया कि काल की दृष्टि से वैदिक धर्म प्राचीन है तथा पारसी मत की अधिकांश मान्यताएँ वैदिक मान्यताओं से पर्याप्त समानता रखती है।

'धर्म का आदि स्रोत' आर्य समाज के क्षेत्र में पर्याप्त चर्चित हुआ। विभिन्न पत्रों में उसकी समीक्षाएं छपी तथा उसका पाठकवर्ग बढ़ता गया। अन्य मतावलम्बियों ने इस पुस्तक से अपनी असहमती व्यक्त करने में पत्र-पत्रिकाओं का सहारा लिया। इलाहाबाद से निकलने वाले मुस्लिम रिव्यू नामक पत्र में एक लेखक ने एक सत्य प्रेमी नाम से इस ग्रंथ की आलोचना में एक लेखमाला

पं. गंगा प्रसाद उपाध्याय की पुरस्कृत रचना - आस्तिकवाद

परमात्मा की एक अद्वितीय सत्ता को लेकर दार्शनिकों ही नहीं, सामान्य जनों में भी नाना प्रकार की धारणाएँ पाई जाती हैं। संसार के सर्वाधिक प्राचीन धर्मग्रंथ ऋग्वेद में परम सत्ता को एक माना गया है, यद्यपि यह भी कहा गया है कि विद्वान लोग उसे नाना नामों से पुकारते हैं। 'एक सद् विप्रा बहुधा वदंति' ऋग्वेद की इस उक्ति को भारत के अध्यात्म शास्त्र का प्रमुख सिद्धांत कहा गया है। अनेक वेदज्ञों ने वेदों में अनेक देवताओं की सत्ता मानी है, जबकि दयानंद सरस्वती ने इन देवताओं को एक परमात्मा के विभिन्न गुणों का द्योतक बताते हुए उन्हें एक ईश्वर के नाना नाम बताया है। **'तदेवाग्निस्तदादित्यस्तदवायुस्तदु चंद्रमा'** जैसी वैदिक सूक्तियाँ स्पष्ट कहती है कि वह परमात्मा अग्नि, आदित्य,वायु और चंद्रमां आदि नामों से पुकारा जाता है। वेद प्रतिपादित ईश्वरवाद को उपनिषदों ने काव्यात्मक तथा भावप्रधान शैली में वर्णित किया, जिससे इन ग्रंथों की लोकप्रियता बढ़ी। दर्शन शास्त्रों ने भी अपने-अपने ढंग से ईश्वर को व्याख्यायित किया। योग ने उसे क्लेश, कर्म, विपाक और उससे उत्पन्न संस्कारों से रहित बताया और वेदांत ने संसार का उत्पन्नकर्ता, पालनकर्ता तथा संहारकर्ता एवं वेदादि सत्य शास्त्रों का मूल कारण बताया।

कालांतर में भारत में ऐसे दार्शनिक तथा विभिन्न मतों के प्रवर्तक हुए, जिन्होंने ईश्वर की वैदिक अवधारणा को अमान्य ही नहीं किया, अपितु उसका उपहास भी किया। इन नास्तिक दर्शनों में प्रथम नाम चार्वक् (बृहस्पति) का है। जिसने न केवल ईश्वर को अपितु आत्मा, परलोक, पुनरजन्म तथा मोक्ष को भी नकारा। स्वयं बुद्ध परमात्मा के प्रति मौन रहे। उन्हें अज्ञेयवादी कहा जाता है। परवर्ती बौद्धों ने वैदिक मान्यताओं का खुलकर उपहास किया, जिनमें सृष्टिकर्ता के रूप में परमात्मा का विचार भी सम्मिलित है। बौद्ध नैयायिक धर्मकीर्ति ने कहा -

वेदप्रामान्य कस्यचित कर्तृत्वादः
स्नानेधर्मेच्छा जातिवादापलेपः।
सन्तापरम्भा पापहानाय चेपि,
ध्वस्त प्रज्ञाना प्रज्वलिंगानि जाड्ये।।

अर्थात वेद को प्रमाण मानना किसी (ईश्वर) सत्ता के द्वारा संसार को उत्पन्न मानना, तीर्थ या नदी विशेष में स्नान करने से पुण्यलाव मानना, जन्म की जाति पर अभिमान करना, पंचाग्नि तप से पापों का निवारण मानना - ये पाँच चिह्न उन लोगों के हैं, जिनकी बुद्धि नष्ट हो गई है और जो जड़मति है, कहना नहीं होगा कि वैदिक मान्यताओं पर इतना भयंकर और उपहासपूर्ण प्रहार शायद ही किसी ने किया हो। जैन लोग स्वयं को आस्तिक तथा ईश्वरवादी मानते हैं, किन्तु वे इसे सृष्टि का रचयिता नहीं मानते। उनके विचार में कैवल्य अवस्था को प्राप्त उनके तीर्थंकर और संसार त्यागी साधु ही ईश्वर है। उधर पश्चिम में अनीश्वर वादी दार्शनिकों की एक लम्बी परम्परा रही है। नित्शे, मेकाइल बेकुनिन, हेकल और कार्ल मार्क्स सभी अनीश्वरवादी थे। बेकुनिन ने यहाँ तक कहा था कि यदि सचमुच कोई ईश्वर है, तो उसे नष्ट किये जाने की आवश्यकता है। भारत में जब बौद्ध तथा जैन मतों का प्राबल्य था और वैदिक ईश्वरवाद का खुलकर उपहास किया जा रहा था, उस समय प्रसिद्ध नैयायिक उदयनाचार्य ने 'न्याय कुसुमांजलि' नामक ग्रंथ लिखकर ईश्वर की सत्ता को सिद्ध किया। उदयन के ईश्वर की सिद्धी में प्रस्तुत किये गये तर्क अकाट्य थे। एक बानगी देखें-

कार्यायोजनधृत्यादेःपदात् प्रत्ययतः श्रुतेः।
वाक्यात् संख्याविशेषाच्च साध्यो विश्वविदव्ययः ।। ५

अर्थात् निम्न कारणों से ईश्वर की सिद्धी होती है (१) सृष्टि कार्य है, अतः उसका कोई न कोई कर्ता होना आवश्यक है। (२) सृष्टि में व्यवस्था या आयोजन दिखाई देता है। किसी व्यवस्थापक या आयोजक के द्वारा ही शक्य है। वह व्यवस्थापक ईश्वर है। (३) संसार धारण किया हुआ है, इसका धारक परमात्मा है। इसी प्रकार वेद-मंत्रों के प्रमाणों से भी ईश्वर की सिद्धी होती है- आदि। आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानंद सरस्वती ने ईश्वर की सिद्धी तथा उसके युक्ति सिद्ध स्वरूप की मनोग्य व्याख्या कर ईश्वरवाद को एक सुदृढ़ आधार प्रदान किया। उन्होंने एक ओर जहाँ शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित ब्रह्मैक्यवाद का खंडन किया, वहीं ईसाइयत एवं इस्लाम के उस स्वेच्छाचारी ईश्वर का प्रत्याख्यान किया, जो बिना किसी नियम या अनुशासन के संसारी प्रजा का एक तानाशाह की भाँति शासन करता है। प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय की प्रथम दार्शनिक कृति थी आस्तिकवाद, जो १९२६ में प्रकाशित हुई। सच यह है कि तब तक हिन्दी में उच्चकोटि का मौलिक - दार्शनिक साहित्य न के बराबर था। केवल शास्त्रों की व्याख्याएँ दर्शन के छात्रों के लिए उपयोगी हो सकती है, किन्तु मौलिक शैली में दार्शनिक तथ्यों एवं सत्यों की गूढ़ विवेचना का हिन्दी में आरम्भ उपाध्यायजी के आस्तिकवाद के द्वारा ही हुआ। बाद में उनकी अन्य कृतियाँ भी छपी।

आस्तिकवाद के अनेक संस्करण निकले। १९३१ में हिन्दी साहित्य सम्मेलन में अपने कलकत्ता अधिवेशन में लेखक को मंगला प्रसाद पारितोषिक प्रदान किया, जो उस युग का श्रेष्ठ साहित्य - सम्मान था। सन १९८१ तक इस ग्रंथ के पाँच संस्करण छप चुके थे, जो यह बताने के लिए पर्याप्त हैं कि आस्तिकवाद को पाठक समुदाय ने पसंद किया था। इस ग्रंथ की भूमिका महात्मा नारायण स्वामी ने लिखी थी।

बारह अध्यायों में विभक्त आस्तिकवाद, ईश्वर तथा उससे संबंधित अनेक अवांतर विषयों की सतर्क मिमांसा करता है। प्रथम लेखक ने इस विषय की व्यापकता को लिया, कारण कि सृष्टि के आरम्भकाल से लेकर अद्यपर्यंत ईश्वर, उसकी सत्ता,उसके कार्य मनुष्य जाति के विवेचन का मुख्य विषय बने हैं। मनुष्य को अल्पज्ञान वाला तथा अल्पशक्तिवाला बताकर लेखक ने सर्वज्ञ और सर्व शक्तिमान सत्ता के अनुमान की पुष्टि की है। पुनः सृष्टि रचना करने वाले परमात्मा की स्थिति को स्वीकार करना मनुष्य की अनिवार्य नियति है। कार्य-कारण का सिद्धांत सृष्टि रूपी कार्य और उसके कारण (कर्ता) ईश्वर की सत्ता को

www.thearyasamaj.org

स्पष्ट बताते हैं। आज यह धारणा बद्धमूल हो गई है कि आधुनिक विज्ञान ईश्वर की सत्ता से इन्कार करता है। पर यह अर्धसत्य है। संसार के उच्चकोटि के वैज्ञानिकों ने पारलौकिक ईश्वरीय सत्ता को स्वीकार किया है। एल्फ्रेड रसेल वालेस के ग्रंथ (द वर्ल्ड ऑफ लाइफ) को उद्धृत कर उपाध्यायजी ने लिखा कि सच्चा वैज्ञानिक परात्पर ईश्वर की सत्ता को कभी स्वीकार नहीं करेगा। जो लोग विज्ञान और धर्म को एक-दूसरे का विरोधी ठहराते हैं, उनके खंडन में लेखक ने सर ऑलिवर लाज को उद्धृत किया - 'दी रीजन ऑफ रिलीजन एण्ड दी रीजन ऑफ साइंस आर वन' अर्थात् धर्म और विज्ञान के क्षेत्र परस्पर एक और अविरोधी है।

ईश्वर के गुणों की चर्चा में लेखक ने तीन अध्याय लिखे तथा वेदादि शास्त्रों में निरूपित तथाऋषि दयानंद द्वारा मान्य किये गये ईश्वरीय गुणों की सतर्क समीक्षा भी लिखी। ईश्वर की मान्यता के साथ मनुष्य को कर्मफल देने की धारणा जुड़ी हुई है। परमात्मा मनुष्य के शुभाशुभ कर्मों का फलदाता है, किन्तु वह अन्याय, पक्षपात या स्वेच्छापूर्वक उसे कर्मफल नहीं देता। यहाँ उसका न्याय तथा औचित्य मुख्य परिचालक बनता है। एक अध्याय शंका-समाधान के लिए लिया गया और पारमेश्वरी सत्ता के बारे में उठने वाली अधिकांश शंकाओं का समाधान लेखक ने किया। ईश्वर को मानना उपयोगितावाद (यूटिलिटरियन पॉइंट ऑफ व्यूव) की दृष्टि से लाभदायक तथा मनुष्य के हित में है। आस्तिक मनुष्य पाप, अन्याय, अत्याचार एवं परपीड़न से परहेज़ करता है तथा अपने नैतिक मूल्यों का यथाशक्ति निर्वाह करता है। अन्तिम अध्याय में लेखक ने ईश्वर-प्राप्ति के उपायों की चर्चा की है और ज्ञान, कर्म तथा भक्ति को प्रभु-प्राप्ति के मुख्य साधन बताया है। आस्तिकवाद न तो बोझिल है और न जटिल। न इसमें शास्त्रों के प्रमाणों एवं उद्धरणों की भरमार है। तथापि फ्लिंट नामक एक अंग्रेज़ लेखक की पुस्तक 'थिज्म' को उपाध्यायजी ने भूरिशः उद्धृत किया है। उपाध्यायजी के दार्शनिक लेखक से परिचित होने के लिए आस्तिकवाद से भिन्न उनकी अद्वैतवाद (१९२८), जीवात्मा (१९३३), मैं और मेरा भागवान (१९४०) तथा शांकर भाष्यालोचन (१९४७) आदि ग्रंथों का अध्ययन अपेक्षित है।

पृष्ठ १३ का शेष ...

प्रकाशित की। लेखमाला का शीर्षक था 'फाउण्टेन हेड ऑफ रिलिजन पर विचार इसकी प्रथम किश्त में लेखक ने सामी मज़हबों की इस धारणा को सत्य सिद्ध किया कि सृष्टि की उत्पत्ति अभाव से हुई है। यह लिखकर उसने संसार के उपादान कारण प्रकृति की अनादिता को अस्वीकार किया। मुस्लिम रिव्यू के अप्रैल १९११ के अंक में इसी लेखक ने प्रकृति की अनादिता को पुनः चुनौती दी और कहा कि सर्वशक्तिमान परमात्मा के समानान्तर अनादि प्रकृति की स्वतंत्र सत्ता को कैसे माना जा सकता है? वैदिक मैग्जिन में पं. गंगा प्रसाद ने मुस्लिम रिव्यू के आक्षेपों का धारावाहिक उत्तर दिया। फलतः कार्तिक १९६८ वि. (१९११) के अंक में 'सृष्टि उत्पत्ति का सिद्धांत' तथा इससे पहले के अश्विन १९६८ वि. के अंक में क्या सृष्टि की रचना अभाव से हुई है? लेख छपे। अंतिम लेख मार्गशीर्ष १९६८ वि. (१९११) के अंक में दी फाउण्टेन हेड ऑफ रिलीजन : ए विण्डिकेशन शीर्षक। इस प्रकार इस्लाम के प्रवक्ता द्वारा किये गये आक्षेपों का सप्रमाण समाधान केवल लेखक ने किया।

आलोच्य ग्रंथ की ओर ईसाई मतानुयायियों का भी ध्यान गया। कलकत्ता से प्रकाशित होने वाले एपीफेनी नामक ईसीईपत्र ने २ अप्रैल १९१० के अंक में इस पर गंभीर आलोचना लिखी। पारसियों ने भी इस ग्रंथ की चर्चा अपने पत्रों-जामे जमशेद (बम्बई) तथा सांझ वर्तमान (दोनों दैनिक) के १ सितंबर, १९१० के अंकों में की। भारत के अतिरिक्त यह ग्रंथ यूरोप, अमेरिका तथा अफ्रीका में भी पढ़ा गया। मुस्लिम रिव्यू में छपे लेखों के लेखक मौलवी अबू अब्दुल्ला मुहम्मद जका उल्ला खाँ एम.ए. थे, यह तथ्य लेखक ने इस ग्रंथ के हिन्दीअनुवाद की भूमिका में उजागर किया। तथा यह बताया कि ईसाई पत्र इंडियन- विटनेस ने उसकी आलोचना में जो लिखा, उसका उत्तर कुद लेखक ने मूल ग्रंथ (अंग्रेजी) के तीसरे संस्करण में दिया था। खेद है कि तुलनात्मक धर्म विषयक इस कालजयी ग्रंथ और उसके लेखक के बारे में आर्य समाज की वर्तमान पीढ़ी लगभग अपरिचित है।

पृष्ठ १२ का शेष ...

और उनके अनुयायी विद्वानों ने इस प्रकरण को जीवित माता-पिता की सेवा में घटाया है। श्ब्द्ध निर्णय पं. शिवसंकर का ऐसा ग्रंथ है, जिसमें जीवित पितरों की सेवा को श्राद्ध बताया है। न्हें तृप्त करना ही तर्पण है।

५) त्रिदेव निर्णय : पं. शिवशंकर का यहग्रंथ पौराणिक देवी-देवताओं का तत्संबंध कथाओं, उपाख्यानों, विवरणों तथा अन्य प्रसंगों की युक्तिसिद्ध, बुदि्संगत व्याख्या करने का असफल प्रयास है। सच तो यह है कि स्वामी दयनंद ने पुराणों को इस प्रकार युक्ति सिद्ध करने का कभी समर्थन नहीं किया। वे पुराणों की अधिकांश कथाओं, उपाख्यानों तथा देवगाथाओं को कपोलकल्पित गप्पों से अधिक महत्व नहीं देते थे। उन्होंने पुराणों के देवी-देवताओं तथा उनकी कल्पित कथाओं को पोपों के आख्यान तथा गपोड़ा की संज्ञादी है। ऐसी स्थिति में हम यह सोचने के लिए वाध्य होते हैं कि क्या ब्रह्मा, विष्णु और शिव (महेश) इस पौराणिक देवत्रयी तथा उसके पुराण वर्णित परिकरों की कोई युक्तिसंगत व्याख्या करना हम आर्य समाजियों के लिए उचित है? सच तो यह है कि वैदिक ब्रह्मा वेदज्ञान के प्रस्तोता विद्वान का सूचक है, जवकि पुराणों में उसे सृष्टि का कर्ता बताया गया है। पौराणिक विष्णुशेष शायी लक्ष्मीपति तथा पद्मनाभ है, जबकि वैदिक विष्णु सर्व व्यापक परमात्मा है। पौराणिक शिव की कथा ही विचित्र है। शिव परिवार के सदस्यों तथा उनके वाहनों को लेकर खुद पौराणिकों ने उपहास किया है। एक बानगी देखें. गणेश के वाहन चूहे पर शंकर के गले में दारण किया नाग लपकता है, उधर कार्तिकेय (शिव का दूसरा बेटा) का वाहन अपने चिर शत्रु साँप (शंकर के गले की माला) पर झपटता है और उसे अपना आहार बनाना चाहता है। पार्वती का वाहन सिंह है, जबकि खुद शिव नंदी (बैल) की सवारी करते हैं। सिंह नंदी पर झपटता है, तो शिव प्रांगण में यह विचित्र अराजकता फैली देखकर खुद भोले बाबा परेशान हो जाते हैं। पुराणों की ये कहानियाँ और त्रिदेवों की ये कथाएं हमारी दिलचस्पी का सामान तो जुटाती है, किन्तु उनमें कोई युक्ति, संगति या वेदानुकूलता तलाश करना दूर की कौड़ी लाने से कम नहीं है।

www.thearyasamaj.org

సమాజ సేవలో ఆర్యసమాజ్

సమావేశంలో మాట్లాడుతున్న కేశవరావు

బన్సీలాల్‌పేట, న్యూస్‌లైన్: రజాకార్ల ఆగడాలను, ఆకృత్యాలకు వ్యతిరేకంగా నాడు ఆర్య సమాజ్ ప్రజలకు అండగా ఉంటూ క్రియాశీలక పాత్ర నిర్వహించిందని టీఆర్‌ఎస్ సెక్రెటరీ జనరల్ కె.కేశవరావు అన్నారు. సికింద్రాబాద్ ఆర్పీ రోడ్డులోని ఆర్యసమాజ్ మందిరంలో ఆంధ్రప్రదేశ్ ఆర్య ప్రతినిధి సభ ఆధ్వర్యంలో బుధవారం ఏర్పాటు చేసిన సామూహిక శ్రావణి ఉపకర్మ, ఆర్య సత్యాగ్రహ బలిదాన దినం కార్యక్రమానికి ఆయన ముఖ్య అతిథిగా హాజరై మాట్లాడారు. తెలంగాణ ప్రజలను చైతన్యవంతులను చేస్తూ నాటి పోరాటంలో ఆర్య సమాజ్ ప్రతినిధులు కనబర్చిన ధైర్య సాహసాలు అమోఘమన్నారు. 125 ఏళ్ల క్రితం స్థాపించిన ఆర్య సమాజ్ నేటికీ సామాజిక సేవా కార్యక్రమాలతో సమాజ హితానికి చేస్తున్న కృషి అభినందనీయమన్నారు. ఆర్య ప్రతినిధి సభ రాష్ట్ర ప్రధాన్ విఠల్ ఆర్య, టీవీ నారాయణలు మాట్లాడుతూ... ఆర్య సమాజ్ ఓ నిర్దిష్టమైన లక్ష్యసాధనతో సమాజ పురోభివృద్ధికి చిత్తశుద్ధితో పునరంకితమై పని చేస్తోందని వివరించారు. కార్యక్రమంలో ఆర్య సమాజ్ ప్రతినిధులు మామిడి శ్రీనివాస్, హరికిషన్‌లతోపాటు వైఎస్సార్ సీపీ సనత్‌నగర్ కోఆర్డినేటర్ శీలం ప్రభాకర్, నగర నలుమూలల నుంచి అనేక మంది ఆర్య సమాజ్ ప్రతినిధులు పాల్గొన్నారు.

హైదరాబాద్ ఆంధ్రప్రభ

గురువారం | 22 | ఆగస్టు | 2013 ■ 20 పేజీలు

ఆర్యసమాజ్ సేవలు అభినందనీయం: కేశవరావు

హైదరాబాద్ | గురువారం | ఆగస్టు | 22 | 2013 సాక్షి

स्थानीय समाचार पत्रों में कार्यक्रम की चर्चा

త్యాగాలు, ఉద్యమాలతోనే 'తెలంగాణ'

బన్సీలాల్‌పేట్: స్వచ్ఛంద ఉద్యమాలు, యువకుల బలిదానాలు, ప్రజల ఆకాంక్షను గుర్తించి కాంగ్రెస్ ప్రభుత్వం తెలంగాణ ఇస్తున్నట్టు ప్రకటించిందని టీఆర్‌ఎస్ రాష్ట్ర సెక్రటరీ జనరల్ కే.కేశవరావు అన్నారు. నెల రోజుల్లో తెలంగాణ వస్తుందని, ఎవరైనా అడ్డుకుంటే మరో ఉద్యమానికి సిద్ధం అవుతామని ఆయన చెప్పారు.

సికింద్రాబాద్ ఆర్పీ రోడ్డులోని ఆర్య సమాజ మందిరంలో బుధవారం ఆర్య సత్యాగ్రహ బలిదానం నిర్వహించారు. ముఖ్యఅతిథి కేకే మాట్లాడుతూ నిజాం సర్కారు, రజాకార్ల దుశ్చర్యల నుంచి తెలంగాణ ప్రజలకు విముక్తి కలిగించడంలో ఆర్య సమాజ్ పాత్ర గొప్పదన్నారు. ఆర్య ప్రతినిధి సభ రాష్ట్ర అధ్యక్షుడు విఠల్‌రావు ఆర్య, ప్రధాన కార్యదర్శి హరికిషన్, ఉపాధ్యక్షులు టీవీ.నారాయణ, లక్ష్మణ్ సింగ్ సత్యాగ్రహంలో బలిదానం చేసుకున్న వారికి శ్రద్ధాంజలి ఘటించారు. ఆర్పీ రోడ్డు శాఖ ప్రధాన కార్యదర్శి మామిడి శ్రీనివాస్ ఆధ్వర్యంలో జరిగిన సమావేశంలో జంట నగరాల ప్రతినిధులు హాజరయ్యారు. ఉదయం సామూహిక శ్రావణీ ఉపాకర్మ పర్వము నిర్వహించారు. ఆచార్య వసుధాశాస్త్రి, అరవింద శాస్త్రి, ప్రియాదత్, సుశీల్‌కుమార్ శాస్త్రి యజ్ఞం నిర్వహించారు.

సభకు హాజరైన కేశవరావు

www.thearyasamaj.org

ప్రజలను చైతన్యపరచడంలో ఆర్యసమాజ్‌ది కీలకపాత్ర

టీఆర్ఎస్ సెక్రటరీ జనరల్ కె.కేశవరావు

సమావేశంలో మాట్లాడుతున్న కె.కేశవరావు

బన్సీలాల్‌పేట్, ఆగస్టు 21 (టీ మీడియా) : రజాకార్ల అణచివేతను ఆర్యసమాజ్ అండతో ప్రజలు వారిని ఎదురొడ్డారని తెరాస సెక్రటరీ జనరల్ కె.కేశవరావు అన్నారు. జంట నగరాల ఆర్య సమాజాల సామూహిక శ్రావణి ఉపకర్మ పర్వం బుధవారం జరిగింది. సికింద్రాబాద్ ఆర్‌పీ రోడ్ ఆర్యసమాజ్ శాఖ ఆధ్వర్యంలో జరిగిన ఈ కార్యక్రమంలో ఆయన మాట్లాడుతూ నాటి ప్రజల్లో రజాకార్ల కీచక ప్రవర్తనను అడ్డుకోవడంలో ప్రజలను చైతన్యపరచడంలో ఆర్యసమాజ్ కీలక పాత్ర పోషించిందన్నారు. 125 సంవత్సరాల క్రితం స్థాపించబడిన ఆర్యసమాజ్ ప్రజలతో మమేకమవుతూ వారి మూఢ విశ్వాసాలను పారదోలేందుకు ఎనలేని కృషిచేసిందన్నారు. హిందువుల మనోభావాలను గౌరవించేలా అనేక కార్యక్రమాలు ఆర్యసమాజ్ నిర్వహించిందన్నారు. రాజధాని హైదరాబాద్ విషయంలో మెలికపెడితే సహించేది లేదని తిరిగి ఉద్యమాన్ని ఉధృతం చేస్తామని ఆయన హెచ్చరించారు. నిష్పక్షపాతంగా వ్యవహరించాల్సిన ముఖ్యమంత్రి కిరణ్‌కుమార్‌రెడ్డి పక్షపాతంగా వ్యవహరిస్తున్నాడన్నారు. కార్యక్రమంలో ఆచార్యవసుధా శాస్త్రి, ఆచార్య అరవిందశాస్త్రి, ఆర్య ప్రతినిధి సభ అధ్యక్షుడు విఠల్‌రావు ఆర్య, ఆర్య ప్రతినిధి సభ ఉప ప్రధాని టీవీ.నారాయణ, మంత్రి మామిడి శ్రీనివాస్, హరికిషన్‌జీ పాల్గొన్నారు.

సమావేశంలో పాల్గొన్న వివిధ జిల్లాల ఆర్యసమాజ్ ప్రతినిధులు

నమస్తే తెలంగాణ
హైదరాబాద్
గురువారం | 22 ఆగస్టు | 2013
పేజీలు 20

గురువారం 22 ఆగస్టు 2013

హైదరాబాద్ తెలంగాణలో అంతర్భాగం: కేకే

మాట్లాడుతున్న కె.కేశవరావు

బన్సీలాల్‌పేట, న్యూస్‌టుడే: పది జిల్లాలతో కూడిన తెలంగాణే కావాలని, అందులో హైదరాబాద్ అంతర్భాగమని, దీనిపై మెలికపెడితే ఊరుకునేది లేదని తెరాస సెక్రటరీ జనరల్ కె.కేశవరావు అన్నారు. బుధవారం ఆర్పీ రోడ్డులోని ఆర్యసమాజ్‌లో జంటనగరాల ఆర్యసమాజాల సామూహిక శ్రావణి ఉపకర్మ పర్వం జరిగింది. ముఖ్య అతిథిగా హాజరైన కేశవరావు మాట్లాడుతూ తెలంగాణ అంశం గురించి ప్రస్తావించారు. రజాకార్ల అణచివేత సమయంలో ఆర్యసమాజం ప్రజలకు అండగా నిలవడమే కాకుండా చైతన్యం కలిగించేలా కార్యక్రమాలు చేపట్టిందన్నారు. 120 ఏళ్ల కిందటే ఆర్యసమాజం ఏర్పడి, నేటికీ సేవలందిస్తుండడం అభినందనీయమన్నారు. కార్యక్రమంలో ప్రధాన్ విఠల్‌రావు ఆర్య, ఉపప్రధాన్ టీవీ నారాయణ, వేదాలంకరణ్ హరికిషన్‌జీ, మామిడి శ్రీనివాస్, ఆచార్య వసుధా శాస్త్రి, అరవింద్‌శాస్త్రి, ప్రియదత్‌శాస్త్రి పాల్గొన్నారు.

ఆంధ్రజ్యోతి
హైదరాబాద్
20 పేజీలు
గురువారం 22-8-2013

www.thearyasamaj.org

हैदराबाद आर्य सत्याग्रह के शहीदों को श्रद्धांजलि देने हेतु

डॉ. टी.वी. नारायणजी उप प्रधान सभा का सम्मान करते हुए

आर्य समाज आर.पी. रोड के मंत्री श्री मामिडी श्रीनिवासजी आर्य प्रतिनिधि सभा के महामंत्री श्री हरिकिशन वेदालंकार जी का सम्मान करते हुए चित्र में श्री लक्ष्मण सिंह जी उप प्रधान भी उपस्थित हैं

आर्य शहीदों को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए चित्र में शहीदों के प्रति गीत गाते हुए श्री रामचंद्र कुमारजी व अन्य

डॉ. वसुधा शास्त्रीजी का सम्मान करते हुए।

यज्ञ करते हुए आर्य कार्यकर्ता गण । सभा में उपस्थित जन समूह ।

हैदराबाद आर्य सत्याग्रह के शहीदों को श्रद्धांजलि देने हेतु

का कोई अर्थ नहीं। अतः उन्होंने उपस्थित जन समूह से पूछा कि क्या हैदराबाद हमारा

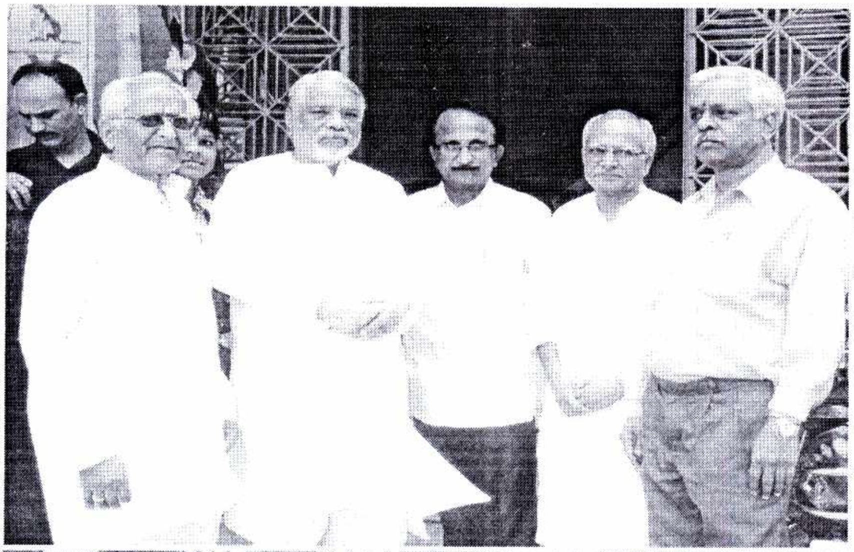

है? तो लोगो ने एक स्वर से हैदराबाद हमारे के पक्ष में हाँ भरी। श्री विट्ठलराव आर्य, प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा ने नारा दिया कि **शहर हमारा- गाँव हमारा, जय तेलंगाना- जय तेलंगाना** सभा प्रधान ने सारी आर्य जनता से अपील की कि अपने

अस्तित्व और अधिकारों की रक्षा के लिए जैसे निज़ाम के अत्याचारों के खिलाफ लड़ाई लड़ी थी, उसी प्रकार आज तेलंगाना के लिए हम सबको मिलकर के इस आंदोलन को अंतिम स्थिति तक अर्थात तेलंगाना राज्य प्राप्त होने तक आगे बढ़ाना चाहिए। उन्होंने भारत सरकार से व काँग्रेस पार्टी से माँग की कि वे तुरंत संसद में तेलंगाना राज्य संबंधी बिल ले आएँ और पारित कर लें। उन्होंने यह भी माँग की कि आंध्र प्रदेश के मुख्यमंत्री श्री किरण कुमार रेड्डीजी अब केवल सीमांध्र के पक्षपाती हो गए हैं। अतः उन्हें तुरंत मुख्यमंत्री पद से त्यागपत्र देना चाहिए।

www.thearyasamaj.org

RNI.No.52990/93 Reg. No. HD / 783 / 2012-14 27-08-2013 आर्य जीवन

ఆర్య జీవన్

హిందీ-తెలుగు ద్విభాషా పక్ష పత్రిక

ఆర్య ప్రతినిధి సభ ఆంధ్రప్రదేశ్, 4 - 2 - 15
మహర్షి దయానంద మార్గము
సుల్తాన్ బజార్, హైదరాబాద్ - 500 095

ఫోన్: 040 - 24753827, 66758707, ఫ్యాక్స్:24557946
సంపాదకులు - విఠల్‌రావు ఆర్య, ప్రధాన్ సభ

आर्य समाज चेंगीचर्ला द्वारा आयोजित श्रावणी के संदर्भ में वेदप्रचार कार्यक्रम

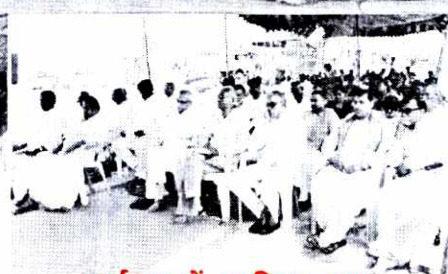

Delivery - 110001
31 AUG 2013
New Delhi

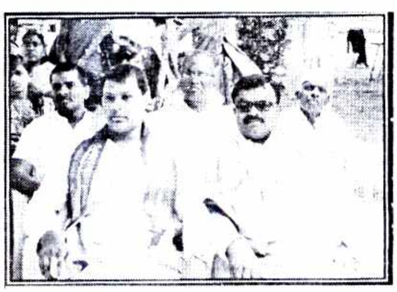

कार्यक्रम में उपस्थित सभा अधिकारी श्रीहरिकिशन वेदालंकार-महामंत्री, श्री रामचंद्र कुमारजी उपमंत्री

श्री अशोक श्रीवास्तवजी - कोषाध्यक्ष, व अन्य ।

पं. गणेशदेवजी कार्यक्रम का संचालन करते हुए व यज्ञ को सम्पन्न करवाते हुए।

THE VIEWS & THE NEWS PUBLISHED IN THIS ISSUEMAY NOT NECESSARILY BE AGREEABLE TO THE EDITOR

कलांजली प्रेस विठ्ठलवाडी में मुद्रित करवा कर प्रकाशित किया, प्रकाशक: आर्य प्रतिनिधि सभा आं. प्र. सु. बाज़ार, हैदराबाद